राणा ने सभी को सोना, नकद रुपए तथा वस्त्रों का दान किया। तदुपरांत बड़े आदर-सत्कार के साथ विदा किया और रानी झाली बाई से भक्त रविदास जी का यश सुना। फिर रानी ने चितौड़ के राणा को रविदास जी के जीवन की वह साखियां सुनाईं जो वह काशी से सुनकर आई थी।

रानी झाली ने राणा साहिब को प्रेरित करके रविदास जी का श्रद्धालु बना दिया। दोनों पति-पत्नी ने फैसला करके भक्त रविदास जी को चितौड़ आने का निमंत्रण भेजा। प्रेम एवं भक्ति में खिंचे हुए रविदास संदेश मिलते ही चितौड़ को चल पड़े। उनके साथ कई भक्त भी थे। मार्ग में प्रभु भक्ति का प्रचार करते हुए वे चितौड़ पहुंचे। राजमहल का एक हिस्सा रविदास जी के लिए खाली करवा दिया गया। पूजा की सामग्री मंगवाई गई और अन्न के भण्डार खोल दिए गए। निर्धनों को अन्न तथा वस्त्र बांटा जाने लगा।

भक्त जी के राजमहल में पहुंचने पर रानी झाली बाई ने सन्तों, पंडितों तथा विद्वानों को बुला कर एक बड़ा यज्ञ करना चाहा। रानी की सलाह पर स्वीकृति हो गई तथा यज्ञ का प्रबंध किया गया। शहर में पंडित, ज्योतिषी तथा विद्वानों एवं प्रतिष्ठित लोगों को यज्ञ में बैठने तथा भोजन का निमंत्रण दिया गया। राणा चितौड़ का निमंत्रण भला शामिल होने से इन्कार कौन करे ? यज्ञ वाले दिन सब एकत्रित हो गए तथा पंगतें लग गईं। जब प्रसाद बांटने लगे तो सन्तों और पंडितों ने इस बात का विरोध किया कि रविदास पंगत में क्यों बैठा है? यह निम्न जाति का चमार है। हम धर्म भ्रष्ट नहीं करवाएंगे। रविदास हमारे साथ न बैठे। हम उच्च कुल के हैं। उनके मन का भ्रम था।

सन्तों के यह कटु वचन रविदास जी ने भी सुन लिए, लेकिन वह क्रोधित नहीं हुए बल्कि मुस्कराते रहे। भक्ति के साथ-साथ रविदास जी लोगों का धर्म एवं जाति-पाति पर सुधार भी करते रहते थे। उन्होंने

रानी को पास बुला कर कहा–

'हे रानी ! यह उच्च ब्राह्मण हैं, पहले इनको भोजन करवाएं। हमारी कोई बात नहीं, हम बाद में भोजन ग्रहण कर लेंगे।'

ऐसे वचन सुनते ही रानी झाली बाई व्याकुल हो गई। उसके मन में आया कि वह सभी को कानों से पकड़-पकड़ कर बाहर निकाल दे। लेकिन भक्त रविदास जी ने रानी को प्रेम से समझाया। राणा और रानी मायूस हो कर खड़े हो गए, अंत में राणा ने पंगत में जा कर पंडितों से कहा, 'कृपा आप भोजन ग्रहण कीजिए, आपकी बात मान ली है। गुरुदेव आपके साथ पंगत में बैठ कर भोजन नहीं करेंगे।'

मूर्ख जाति के अभिमानी पंडित भोजन करने लग गए। वे हंस रहे थे कि उनकी बात स्वीकार कर ली गई है, लेकिन वे ऐसे मूर्ख थे कि जैसे भाई गुरदास जी ने बताया है– जो अपनी राख उड़ा कर अपने सिर में डालते हैं :–

जिऊं हाथी दा नावणा बाहर निकल खेह उडावै ।
जिऊं ऊठै दा खावणा परहर कनक जवाहां खावै ।
कमले दा कछोटड़ा कदे लक कदे सीस वलावै ।
मूरख दा किहु हथु न आवै ।

मूर्ख कह तो बैठे लेकिन जब ईश्वर का चमत्कार देखा तो वे डर गए, कई बुद्धिहीन थे। उन्होंने शोर मचा दिया कि रविदास जी हमारे साथ बैठे हैं। प्रसाद बांटने वालों ने हंस कर कहा, 'महात्मा जी ! प्रसाद ग्रहण कीजिए, वहम मत करें, डर एवं भ्रम का कोई ईलाज नहीं, प्रसाद खाएं। लेकिन वे भयभीत हो गए। छोटे-बड़े सभी पंडित बोल पड़े और सूझवानों ने भक्त जी की लीला समझी कि उनका जाति अभिमान ईश्वर को अच्छा नहीं लगा। यह चमत्कार ईश्वर का है।

पंडित हार गए। उन्होंने राजा जी के आगे प्रार्थना की, 'महाराज ! महाराज ! भक्त रविदास जी को बुलाएं, वे स्वयं पंगत में बैठे तभी

भोजन होगा। हमारी जात-पात के अंधकार से भरी हुई आंखें खुल गई हैं। ईश्वर भक्ति एवं प्रेम भावना का भूखा है, जाति-पाति का नहीं।

भक्त रविदास जी उनके साथ बैठे तो सभी ने मिल कर भोजन ग्रहण किया। भोजन के पश्चात भक्त रविदास जी ने सबको प्रेम और भक्ति का उपदेश दिया।

भक्त जी का ठाकुर नदी में बहाना

चितौड़ के राजा चंद्रहांस को संसार से तारते हुए भक्त रविदास जी देश की यात्रा तथा तीर्थों का स्नान करते हुए काशी नगरी में आ गए। काशी में एक हिन्दू राजा नागर मल भी था। वह मुगल सल्तनत के अधीन रहता था तथा अपना राज करता था। तीर्थों तथा धर्मों के ज्यादा मुकद्दमे उसी के पास जाते।

जब रविदास जी वापिस काशी आए तो आपका यश दुगुना होने लगा। राजा नागर मल ने एक बड़ा यज्ञ किया। उस यज्ञ में भक्त रविदास जी को भी निमंत्रण दिया गया। जब आप पधारे तो आपके साथ श्रद्धालु तथा सेवक भी थे। जब वे यज्ञ में शामिल होने लगे तो ब्राह्मणों ने शोर मचा दिया कि शूद्र ब्राह्मणों के बीच नहीं बैठने चाहिए। इस तरह हमारा अपमान होता है, धर्म भ्रष्ट होगा। रविदास चाहे भक्ति करता है, फिर भी जन्म के कारण तो शूद्र है।

यह सुन कर नागर मल कुछ सोच में पड़ गया, वह न तो ब्राह्मणों को नाराज कर सकता था तथा न ही भक्त रविदास जी को कह सकता था कि वह यज्ञ में शामिल न हों। उनके आगमन पर पूजा-अर्चना के समय लोगों ने माथा टेकना शुरू किया। माया के ढेर लग गए, ब्राह्मणों की तरफ किसी ने न देखा। सारे ही निराश हो गए। ब्राह्मणों ने राजा नागर मल के पास जा कर फरियाद की तथा राजा को क्रोध से कहा-'हे राजन ! आप ने पुराने शास्त्रों, स्मृतियों, ब्राह्मणों तथा

ग्रंथों का तिरस्कार किया है। शूद्र का यज्ञ में क्या काम ? कलयुग आ गया है। हम प्रसाद नहीं लेंगे, हम जा रहे हैं।'

वास्तव में ब्राह्मण लालची थे, वे यज्ञ छोड़कर जाना भी नहीं चाहते थे तथा शोर ही मचा रहे थे। नागर मल ने विवेक और गंभीरता से कहा-'हे पंडित जनों ! इस बात का कई बार फैसला हो चुका है कि भक्त रविदास एक ब्रह्म स्वरूप आत्मा हैं। जाति-पाति का भेदभाव मत करें। यदि कोई भजन करता है, वह पवित्र एवं उच्च कुल हो जाता है। कर्म प्रधान है, जाति प्रधान नहीं। आओ ! भक्त जी के पास चलकर ही निर्णय कर लेते हैं।'

यह कह कर राजा ब्राह्मणों को साथ लेकर भक्त रविदास जी के पास गए। अन्तर्यामी भक्त जी जो घाट-घाट के ज्ञाता थे, उन्होंने राजा के मन की भावना जान ली और कहा-'हे राजन ! आज्ञा करें, आप कैसे आए हो।'

नागर मल ने कहा-'महाराज ! ब्राह्मण शंका कर रहे हैं। इनकी शंका निवृत कीजिए।

रविदास जी-'ब्राह्मण किस बात की शंका करते हैं ? इनको हम क्या कहते हैं, भला बता सकते हैं ?

नागर मल-'एक इनकी शंका है कि आप जन्म से शूद्र हो, इसलिए पुराने वेद-शास्त्रों के अनुसार आपका यज्ञ में शामिल होना उचित नहीं, इसलिए आप अलग बैठें।

रविदास जी-'दूसरी शंका क्या है ?'

नागर मल-'दूसरी शंका यह है कि आप एक तरफ तो ईश्वर की उपासना बताते हो और देवी-देवताओं, ठाकुर, जनेऊ आदि को झूठा कहते हो, दूसरी तरफ यह सभी मर्यादा निभाते भी हो। आप ने जनेऊ भी डाला हुआ है। यह ब्राह्मणों जैसी बेईमानी है। ऐसी शंका है। इनका जवाब देना भी आवश्यक है।'

रविदास जी यह सुनकर मुस्करा दिए। उन्होंने फरमाया-'हमें यह समझ में नहीं आता कि ब्राह्मण किस बात की ईर्ष्या करते हैं ? परमात्मा सबका कर्ता है इसलिए उसकी पूजा करते हैं। यश करते हैं। शंख सागर में से मिला विष्णु भगवान को अर्पण हुआ। चंदन शीतल वस्तु है, जो माथे पर शीतलता के कारण लगाया जाता है। लेकिन जनेऊ हमने धागे का नहीं पहना। यह भ्रम है, जनेऊ तो जत और धर्म का है। भलाई तो सेवा की निशानी है। ब्राह्मणों का आधिपत्य नहीं, कोई जायदाद नहीं। यह एक घमण्ड है। केवल राज भाग इनके अधीन रहा। इन्होंने अपनी इच्छा से किसी को ऊंचा और किसी को नीचा करार दे दिया। राजन ! जरा सोचिए यदि हम काशी में जन्म न लेते, कहीं बाहर से आते तो क्या पता चलना था कि हम कौन हैं। यह पंचतत्व शरीर किसी का गोरा तथा किसी का काला है। जाति से शरीर का कोई संबंध नहीं होता। क्षत्रिय और ब्राह्मण भी काले हैं तथा कुकर्म भी शूद्रों से अधिकतर करते हैं। परमात्मा जिस बालक को जन्म देता है, उसके माथे पर जाति एवं गौत्र नहीं लिखता। या तो पंडित इस संबंध में कोई सबूत दें।

भक्त जी का बाणी उच्चारणा

खटु करम कुल संजुगतु है हरि भगति हिरदै नाहि ।। चरनारबिंद न कथा भावै सुपच तुलि समानि ।।१।। रे चित चेति चेत अचेत ।। काहे न बालमीकहि देख ।। किसु जाति ते किह पदहि अमरिओ राम भगति बिसेख ।।१।। रहाउ ।। सुआन सत्रु अजातु सभ ते क्रिसन लावै हेतु ।। लोगु बपुरा किआ सराहै तीनि लोक प्रवेस ।।२।। अजामलु पिंगुला लुभतु कुंचरु गए हरि कै पासि ।। ऐसे दुरमति निसतरे तू किउ न तरहि रविदास ।।३।।

(केदारा रविदास जी, पन्ना ११२४)

हे राजन ! समझने वाली बात यह है कि प्रभु की भक्ति के बिना भाव दिल से परमात्मा के साथ प्रेम किए बगैर हर मनुष्य नीच है। चाहे छः प्रकार के कर्म क्यों न करता हो। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि ईश्वर की आराधना करे। यदि जन्म-जाति की ओर जाओ तो वाल्मीकि बताएं कौन-सी उच्च कुल में से थे, जिन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम चन्द्र जी की रामायण लिखी। राम नाम के सिमरन से ही तो वह श्रेष्ठ हो गए।

एक पुरुष कुत्तों का शिकार करता था लेकिन श्री कृष्ण के चरणों का भंवरा था इसलिए वह सत्कार प्राप्त कर गया। पिंगला व अजामल जैसे अनेकों प्रभु सिमरन करने वाले नश्वर संसार से मुक्ति प्राप्त कर गए। ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति का ऊंचा स्थान बनाता है। इसलिए हे राजन ! यदि ऐसे पुरुष संसार से पार हो गए हैं तो आप क्यों घबरा रहे हो। ईश्वर की स्तुति करना सबसे बेहतर है। यह ब्राह्मण एवं जाति-पाति का ख्याल छोड़ दीजिए। कबीर जी का वचन याद कीजिए यदि ब्राह्मण उच्च कुल होते हैं तो इनका जन्म उन बच्चों की तरह नहीं होता, जो शूद्रों के बच्चे हैं।

भक्त रविदास जी के ऐसे वचन सुनकर नागर मल को संतुष्टि हो गई परन्तु ईर्ष्यालु ब्राह्मण वाद-विवाद करते चले गए।

जनेऊ के बारे विवाद छिड़ा तो भक्त जी ने चार युगों के जनेऊ के बारे में बताया। सतियुग का जनेऊ सोना का था, त्रेता युग का चांदी का था, तांबे का जनेऊ द्वापर युग में हुआ तथा कलयुग में सिर्फ धागा का जनेऊ है। शेष रही ठाकुरों की बात-मैं मूर्ति पूजक नहीं।

हे राजन ! यदि आप कहते हो तो गंगा की मूर्तियां गंगा में बहा दी जाती हैं।

नागर मल-'परन्तु आप ने यह रखीं क्यों ? यह क्या भेद है ?'

रविदास जी-'यह एक भेद है आत्मिक मंडल का, भक्ति करने

का साधन। इस संबंध में भक्त जी ने शब्द उच्चारण किया–

फल कारन फूली बनराइ ।। फलु लागा तब फूलु बिलाई ।।
गिआनै कारन करम अभिआसु ।। गिआनु भइआ तह करमह नासु ।।३।।
घ्रित कारन दधि मथै सइआन ।। जीवत मुकत सदा निरबान ।।
कहि रविदास परम बैराग ।। रिदै रामु की न जपसि अभाग ।।

(भैरउ रविदास जी, पत्रा ११६७)

हे राजन ! आप बुद्धिमान हो वनस्पति की तरफ देखो ! पहले फूल लगते हैं, फूल के बाद जब फल की कली बन जाती है तो फूल झड़ जाते हैं, उनकी जरूरत नहीं रहती। फल रह जाता है। इसी तरह भक्ति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए पहले कर्म होता है। भाव भगवान की ओर ध्यान लगाने के लिए कोई न कोई भगवान का चिन्ह रखा जाता है। जब मन टिक जाता है तो वह मूर्ति एक तरफ हो जाती है कर्म का नाश हो जाता है एवं ज्ञान प्राप्त होता है। जैसे बच्चा पहले खिलौनों से प्रेम करता है तथा खेलता है, पर जब बड़ा हो जाता है उसको ज्ञान हो जाता है तो खिलौनों की जगह असली चीज़ से खेलने लग पड़ता है। घी निकालने के लिए दूध अथवा दहीं को रिड़का जाता है। इसलिए हे राजन ! सोचने की बात है हम कोई मूर्ति पूजक नहीं यह तो युगों–युगों से चली आ रही एक मर्यादा थी मंदिर में मूर्ति रखना, कल से सब गंगा में प्रवाह कर दी जाएंगी, अन्य कोई शंका है तो बताओ।

ईश्वर की कृपा से भक्त जी ने हर बात पर ब्राह्मणों को झूठा साबित कर दिया। वे बड़े शर्मिंदे हुए तथा रविदास जी यज्ञ में शामिल हुए। उसी दिन जब वापिस अपने मंदिर आए तो हुक्म करके सभी मूर्तियां गंगा में प्रवाह कर दीं तथा मंदिर में कीर्तन ही प्रधान कर दिया। आप दो समय सत्संग करते तथा सत्संग में वाहिगुरु का यश गाया जाता। भक्त रविदास जी के दर्शन करने के लिए दूर–दूर से संगतें आतीं।

मीरां बाई व भक्त रविदास जी

मीरां बाई उदयपुर के महाराणा सांगा की पुत्रवधू हुई हैं। इस मीरां बाई का नाम सारे भारत के मंदिरों में गूंजता है। यह श्री कृष्ण जी की भक्त हुई। मीरां बाई के भजन मंदिरों में गाए जाते हैं। इसके श्री कृष्ण प्यार तथा भक्ति की फिल्में भी तैयार हुई हैं।

मीरां बाई युवावस्था में ही विधवा हो गई थी। अपने पिता से आज्ञा लेकर वह तीर्थ यात्रा करने के लिए आई। वह प्रभु की भक्ति करने के लिए काशी पहुंची।

काशी नगरी मंदिरों तथा पंडितों की नगरी है, हजारों यात्री रोज आते हैं तथा मंदिरों में गंगा के किनारे हमेशा चहल-पहल रहती है। ऐसी नगरी में मीरां बाई पहुंची। उसके साथ उसकी एक वफादार दासी थी, जिसका नाम करमां बाई था।

यहां बता देना ठीक है, चाहे अलग जगह पर भी मीरां बाई के लिए लिखा है कि मीरां बाई बचपन से ही श्री कृष्ण जी की भक्त थी, वह विष्णु पद पढ़ती तथा युवा अवस्था में श्री कृष्ण जी के मंदिर में देव-दासियों की तरह नृत्य भी करने लग जाती थी। वह श्री कृष्ण के अतिरिक्त किसी की वंदना नहीं करती थी तथा श्री कृष्ण को ही पारब्रह्म समझती थी। वह जब काशी में पहुंची तो उसने हर जगह आडम्बर का ही प्रभाव देखा, विश्व के मालिक पारब्रह्म की वास्तविक पूजा कम होती देखी। वह संतों-महंतों के पास घूमी। उसने हर जगह जाकर ईश्वर का प्रकाश देखने का यत्न किया तो उसको कहीं कुछ नज़र न आया।

मीरां हरि की प्यारी थी। कृष्ण की मूर्ति को उसने मां के कहने पर अपना स्वामी माना था और श्री कृष्ण जी का आंचल न छोड़ा। पर जब ज्ञान हुआ, शादी हुई तो पता लगा कि उसके संसारिक पति

राणा साहिब है तो उसके साथ संसारिक संबंध रखा, जितना स्त्री-पुरुष का शारीरिक संबंध होता है। पर मीरां बाई की आत्मा या रूह तो श्री कृष्ण भगवान के चरणों से जुड़ी रही। धीरे-धीरे मूर्ति एक तरफ हो गई, केवल भक्ति रह गई। आत्मा प्रभु परमात्मा के भजन गाने लगी, वह आडम्बर से बहुत दूर चली गई। काशी के मंदिरों में भगवान का यश कम मिला। उसको तो ब्राह्मण यश ही नजर आया। माया की पूजा दिखाई दी तथा हृदय में संशय उत्पन्न हुआ। व्याकुलता आई, पर जब रविदास जी के दर्शन किए तो आत्मा में से आवाज आई-'यही सत्य है। वास्तव है ! प्रभु की पूजा ! मीरा ! जो ढूंढती थी सो मिल गया।'

मीरां ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की-'हे स्वामी जी !..... यह शब्द अभी मुंह से निकला ही था कि भक्त रविदास जी ने रोक दिया। उन्होंने कहा, 'हे देवी ! मैं तो एक निम्न जाति का व्यक्ति हूं। आप के भले के लिए प्रभु के आगे प्रार्थना करता हूं कि जन्म-जन्म का बिछुड़ा हुआ कहीं मिल जाउं। चौरासी के चक्र में पड़ा हूं मुझे 'स्वामी' कहने का क्या लाभ। स्वामी तो वह मालिक है, जो जगत का कर्ता है, उसके आगे ही प्रार्थना करो।

भक्त जी ऐसे शब्द पढ़ने लग पड़े :

हम सरि दीनु दइआलु न तुम सरि अब पतीआरु किआ कीजै ॥
बचनी तोर मोर मनु मानै जन कउ पूरनु दीजै ॥१॥
हउ बलि बलि जाउ रमईआ कारने ॥ कारन कवन अबोल ॥ रहाउ ॥
बहुत जनम बिछुरे थे माधउ इहु जनमु तुम्हारे लेखे ॥
कहि रविदास आस लगि जीवउ चिर भइओ दरसनु देखे ॥२॥१॥

(धनासरी रविदास जी, पन्ना ६९४)

जिसका भावार्थ है-हे करतार ! इस दुनिया में मेरे जैसा कोई गरीब नहीं तथा आप के जैसा कोई दयालु नहीं। यह बात मानी है। आपके

सुन्दर वचनों में मेरा मन लगा है। भरोसा कर बैठा हूं। अब मन किसी तरफ नहीं जाता।

हे मेरे दातार ! मैं आप पर बलिहारी जाता हूं। पर क्या कारण है कि आप हम से बोलते नहीं, चुप रहते हो। है तो बात ठीक, हे प्रभु ! मैं कई जन्म तथा चिरकाल से आप से बिछुड़ा हूं। अब दर्शन की अभिलाषा है। इसलिए यह मनुष्य जन्म आपके सपुर्द कर दिया है। अथवा मनुष्य जन्म का भाव है कि प्रभु की भक्ति की जाए तथा आशा है कि जीवन में सफलता प्राप्त हो। ऐसे कार्य करें। इसके आगे उन्होंने उच्चारण किया–

'हे देवी ! सब का दाता राम है। उस राम के आगे प्रार्थना करते रहें तथा उसकी ही भक्ति करें। ऐसी भक्ति करें कि द्वेष भाव मिट जाए। मुझे स्वामी कहोगे–मैं तो स्वयं उसको मालिक मानता हूं तथा आओ, इस तरह उनका यश करें–

चित सिमरनु करउ नैन अविलोकनो स्रवन बानी सुजसु पूरि राखउ ।। मनु सु मधुकरु करउ चरन हिरदे धरउ रसन अंम्रित राम नाम भाखउ ।।१।। मेरी प्रीति गोबिंद सिउ जिनि घटै ।। मै तउ मोलि महगी लई जीअ सटे ।।१।। रहाउ ।। साध संगति बिना भाउ नही उपजै भाव बिनु भगति नही होइ तेरी ।। कहै रविदासु इक बेनती हरि सिउ पैज राखहु राजा राम मेरी ।।२।।२।।

(धनासरी रविदास जी, पत्रा ६९४)

मन में आठों पहर सिमरन करते रहो, आंखों में भगवान का ही चित्र हो तथा जो कान सुनने के लिए हैं, इनमें आपके यश के बिना कुछ और न सुनाई दे। ऐसा मन हो कि वह भंवरे की तरह अमृत रूपी यश को ही प्राप्त करें, केवल भगवान का नाम ही उच्चारण करता रहे अन्य किसी तरफ मन न लगे।

यह भी प्रार्थना है कि मेरी प्रीति अन्य किसी और भाव दौलत,

अहंकार, वासना आदि की तरफ न लगे, बल्कि प्रभु का ही यश करती रहे, यह भक्ति महंगे दाम पर ली है। यहां रविदास जी का अपने पूर्व जन्म की तरफ ईशारा है। कैसे उन्होंने पिछले जन्म में भक्ति की पर छोटे से आलस्य के कारण फिर जन्म लेना पड़ा, फिर भक्ति करनी पड़ी।

इसके आगे उन्होंने समझाया–हे देवी ! भक्ति अकेले नहीं होती साधू संगत में होती है क्यों? साधू संगत के बिना प्रेम की उत्पत्ति नहीं होती, प्रेम ही तो भक्ति का मूल है। बस यही प्रार्थना है कि वह भगवान जो राजाओं के राजा हैं, लाज रखें। ऐसा ही कहना चाहिए।

मीरां बाई ने वचन सुने तो हृदय में शांति आ गई। ऐसे ही तो महापुरुष वह ढूंढती थी। उस समय मीरां बाई तथा करमां बाई रविदास जी के मंदिर में ही बैठी थीं कि शाम हो गई। उस समय काशी के मंदिरों की घंटियां बजने लगीं। आरती का समय था, आरती होने लगी। मीरां बाई भी दीये जला कर आरती किया करती थी, पर भक्त रविदास जी की आरती सादे ढंग से होती हुई दिखाई पड़ी। दोनों हाथ जोड़ कर एकाग्रचित्त होकर भक्त रविदास जी ने यह शब्द पढ़ दिया–

नामु तेरो आरती मजनु मुरारे। हरि के नाम बिनु झूठे सगल पासारे ।।१।। रहाउ ।। नामु तेरो आसनो नामु तेरो उरसा नामु तेरा केसरो ले छिटकारे ।। नामु तेरा अंभुला नामु तेरो चंदनो घसि जपे नामु ले तुझहि कउ चारे ।।१।। नामु तेरा दीवा नामु तेरो बाती नामु तेरो तेलु ले माहि पसारे ।। नाम तेरे की जोति लगाई भइओ उजिआरो भवन सगलारे ।।२।। नामु तेरो तागा नामु फूल माला भार अठारह सगल जूठारे ।। तेरो कीआ तुझहि किआ अरपउ नामु तेरा तुही चवर ढोलारे ।।३।। दस अठा अठसठे चारे खानी इहै वरतणि है सगल संसारे ।। कहै रविदासु नामु तेरो

आरती सति नामु है हरि भोग तुहारे ।।४।।३।।

(धनासरी रविदास जी, पन्ना ६९४)

हे भगवान ! आरती, वास्तव में तो आपका नाम ही आरती है। हे मुरदैत्य को मारने वाले प्रभु मुरारी जी ! स्नान भी आपके नाम या साधू संगत की श्रद्धा रूपी धूल है। यह विश्वास हो गया है कि हरि के नाम के अतिरिक्त जितने भी पसारे हैं, वह झूठे हैं। सत्य कहीं नहीं, नाम ही सदा रहने वाला है, अन्य जो कुछ भी दिखाई देता है वह नश्वर है। यदि आसन को लें, कुशा का हो या अन्य किसी वस्तु का तो वह भी टूट कर खत्म हो जाने वाला है, सच्चा आसन तो आपका नाम ही है। चंदन घिसने वाला पत्थर 'उरसा' भी तो आपका नाम है। केसर भी आपका नाम ही है। नाम ही शुद्ध पवित्र जल है, चंदन पर उसको चढ़ाना चाहिए। इन तुकों का समूचा भाव यह है कि हे प्रभु ! आरती करने का जितना सामान, आसन, पत्थर, चंदन तथा केसर आदि जो कुछ ठाकुरों को लगाया जाता है, सब आपके ही पैदा किए हुए हैं। जब वे आपको ये सब चढ़ाते हैं तो कौन-सा प्रशंसनीय कार्य करते हैं। ये सब तो आपके ही हैं, इसलिए आपका नाम श्रेष्ठ है।

अब लें अन्य चीजें, दीया, उसकी बाती तथा तेल आदि, वह भी मैं आपका नाम ही उत्तम समझता हूं। भाव यह कि आपके नाम का यश कर लेना ही उचित है, बाकी झूठा दिखावा है। वास्तव में आपकी शक्ति रूप सूरज, चांद या अग्नि तेल, रूईं जो आपकी किरत या शक्ति है, उसी से ही सब ओर रोशनी होती है। दीये जला कर मनुष्य अहंकार करे कि मैंने आपको रोशनी दी है, यह झूठ है, अहंकार है। इसलिए मैं तो कोई दीया नहीं जलाता। वास्तव में भक्तों के घर में आपके नाम की रोशनी है। सारे जगत में रोशनी है, एक मंदिर तो कुछ बात नहीं।

हे प्रभु ! पंडित कहता है फूलों की माला चढ़ाई जाये। इसलिए फूलों की माला आपकी नाम की शक्ति के साथ अठारह भार वनस्पति जो आप ने धरती पर उत्पन्न की है, पहले ही आपको अर्पण है। सारे फूल भंवरों ने जूठे किए हैं। देखो ! आपकी दी हुई मेहर आपको कैसे समर्पित करो। भाव यह कि फूलों का क्या लाभ, यह तो झूठा आडम्बर है। वास्तव में सब कुछ आपका अपना ही है। इस आडम्बर से बेहतर नाम जपना ठीक है, नाम ही जपते रहना चाहिए। अठारह पुराण, ६८ तीर्थ यह संसार में हैं। बस अपना तो नाम है और सत्य स्वरूप का भोग लगाते हैं। इससे अधिक कुछ नहीं।

मीरां बाई जिस तलाश में थी, उसमें उसको सफलता मिली। उसने निवेदन किया, हे प्रभु भक्त ! दासी को भी भक्ति करने का साधन बताओ, अपनी शिष्य बनाओ, गुरु के बिना भक्ति नहीं हो सकती। मैं तो नाम सिमरन करती, उस भगवान के मंदिरों में उसका यश करती जब नृत्य करती हूं तो सारे लोग मजाक करते हैं, कोई मुझे पगली कहते हैं तथा बुरी समझते हैं।

यह सुन कर भक्त जी बोले-'हे मीरां ! आपका जन्म तो राजा के घर हुआ। आपका इस तरह भक्ति करते फिरना लोगों के लिए मजाक हो सकता है। अमीर को भक्ति करता देख कर लोग इसलिए मजाक करते हैं क्योंकि उनको ज्ञान नहीं, वे अंधे हैं। माया के मोटे पर्दे की पट्टी उनकी आंखों पर बंधी रहती है। उनको तो सिर्फ दुनिया के पदार्थ, मान, अपमान, लालच तथा अहंकार आदि ही दिखाई देते हैं। उनको आत्मिक मण्डल का ज्ञान नहीं जिसे ज्ञान न हो, उसकी बात का क्रोध नहीं करना चाहिए।

मीरां बाई-'जैसे आप हुक्म करोगे, वैसे ही करूंगी, कृपा करें। ससुराल तथा मायके वाले सभी इस बात के विरुद्ध है, पर आत्मा भक्ति के साथ जुड़ चुकी है। रविदास जी ने मीरां बाई को उपदेश

दिया। उसको भक्ति तथा सेवा की तरफ लगाया। वह उसी तरह भक्ति करने लगी।

भक्त रविदास जी का मेवाड़ जाना

कहा भईओ जउ तनु भइओ छिनु छिनु ।। प्रेमु जाइ तउ डरपै तेरो जनु ।।१।। तुझहि चरन अरबिंद भवन मनु ।। पान करत पाइओ पाइओ रामइआ धनु ।।१।। रहाउ ।। संपति बिपति पटल माइआ धनु ।। ता महि मगन होत न तेरो जनु ।।२।। प्रेम की जेवरी बाधिओ तेरो जन ।। कहि रविदास छूटिबो कवन गुन ।।३।।४।।

(पन्ना ४८६-८७)

मीरां इस शब्द को हर समय पढ़ा करती थी क्योंकि इस शब्द का भाव उसके जीवन से मिलता था। मायके तथा ससुराल वाले भक्ति छुड़वाने के लिए उसको कहते थे कि वह साधू भेष त्याग कर मंदिर में राज भवन में ही पूजा करती रहे। देव-दासियों की तरह मंदिर में लोगों के सामने नृत्य न करे, इस तरह राजपूती शान को दाग लगता था। उनकी समझ ही ऐसी थी, पर मीरां कोई परवाह न करती। वह इस शब्द को पढ़ कर ही सुना छोड़ती।

इसका भावार्थ है, क्या हो जाएगा अगर इस तन के टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे ? हे प्रभु ! तुम्हारा प्यार नहीं जाना चाहिए। जीवन का डर नहीं, डर यह है कि आपका प्यार न जुदा हो। यही आपके भक्त को डर रहता है। आपके चरण कंवलों में मन लग गया है, भंवरा बन कर भक्ति का रस ले रहा है। जायदाद तथा माया के झगड़ों में तुम्हारा भक्त नहीं उलझता, तुम्हारा भक्त तो प्यार की ज़ंजीर से बंधा है। किसी तरह भी तुम्हारा सेवक प्यार के बंधन से आज़ाद नहीं हो सकता। अर्थात भक्त जन भक्ति नहीं छोड़ता चाहे उसको

कितने ही कष्ट क्यों न मिलें। जैसे भक्त प्रहलाद को अनेकों कष्ट और डर दिये गए, पर उसने 'राम' नाम का त्याग नहीं किया। 'राम' ने ही उसकी सहायता की। उसको तपते स्तम्भ से भी बचा लिया। मीरां बाई तथा करमां बाई रविदास जी के पास कुछ समय सेवा करने तथा नाम सिमरन के बाद अपने नगर मेवाड़ को लौट गईं। मार्ग में सत्संग होते गए।

मेवाड़ में पहुंच कर मीरां बाई ज्यादा भक्ति में रंगी गई, वह दुनिया तथा माया के पदार्थों को भूल गई। उसके भाई तथा ससुराल वाले इतने क्रोधित हुए कि उसे मारने पर तुल गए। एक दिन ऐसी दशा आ पहुंची कि उसकी माता भी उसकी दुश्मन हो गई। मां कभी संतान को नहीं मारती। पर मेवाड़ के शाही खानदान ने उसे इतना मजबूर किया कि उसने विष का प्याला भरा तथा मीरां को बुला कर कहा-'मीरां यह ठाकुरों का अमृत है, पी लो। सोमनाथ के मंदिर में से आया है। पवित्र अमृत ! जो जन्म मरण काट देगा।'

मीरां एक तो मां पर विश्वास करती थी तथा दूसरा वह भगवान के नाम पर न्यौछावर होती थी। उसने विष का प्याला उठाया तथा गटागट पी लिया। उसके दिल दिमाग पर कोई असर न हुआ, बल्कि उसे विष स्वादिष्ट लगा। उसके प्रभु ने सत्य ही विष को अमृत बना दिया, मीठा शर्बत। उसने कहा-'माता जी ! अमृत तो बहुत ही मीठा है और है कि यही है ?'

मीरां बाई की मां शर्मिंदा हो गई। वह कुछ न कह सकी, बोल भी न सकी, उसको संदेह हो गया कि मीरां को पता लग गया है इसी कारण वह कह रही है। मीरां की मां के हृदय में ममता उमड़ी। उसने मीरां को गले लगा लिया और रोते हुए कहा, 'मीरां ! यह अमृत नहीं, विष था, तुम्हें मारने के लिए दिया था, तुम्हारा भाई तथा तुम्हारे पिता अब तुम्हें जीवित नहीं देखना चाहते, इसलिए मुझ से विष

दिला दिया।

मीरां बाई-'मां मुझे भाई और पिता जी मारना क्यों चाहते हैं ?'

मां-'मीरां तुम एक बड़ी भूल कर आई हो, जो तुम ने रविदास चमार को अपना गुरु धारण कर लिया। अच्छा था यदि रामानंद गुसाईं या किसी पंडित के चरणों में लगती। यह क्या किया ?'

मीरां बाई-'माता जी ! भगवान की दुनिया में सभी उसके पुत्र हैं, सारे मनुष्य हैं उसके बनाए हुए। किरत कर्म करके, कोई माया के कारण बड़ा है तथा कोई छोटा, आत्मा तथा खून हरेक के एक हैं। ईश्वर की भक्ति कोई बुरा कार्य नहीं अपितु नेक कर्म है।

माता जी ! पर मैं मरी नहीं ज़हर तो अमृत बन गया। मेरा भगवान ही रक्षक।

माता आंसू बहाती रही क्योंकि वह अपनी पुत्री से बहुत प्रेम करती थी लेकिन मीरां बाई का खतरा न टला।

एक दिन करमां बाई ने कहा-'हो सकता है मामला बिगड़ जाए, गुरु रविदास जी को बुला लें, उनके आने पर मामला ठीक हो जाएगा, बाहर बहुत चर्चा है।'

यह सुन कर मीरां हंस पड़ी तथा प्रभु यश में भजन गाने लग गई, उसने कह दिया कि जरूर बुला लो। भेज दो संदेश यदि आ जाएं।

'मैं स्वयं जाती हूं।' करमां बाई का उत्तर था।

'अच्छा' कह कर मीरां बाई भक्ति लहर में विष्णु पद गाने लगी, वह एक पल भी भगवान का यश करने से नहीं रुकती थी।

दूसरे दिन सफर का प्रबन्ध करके करमां बाई काशी नगर की तरफ चल पड़ी, उसको आशा थी कि उसके कहने पर भक्त जी अवश्य आ जाएंगे।

करमां बाई भक्त रविदास जी के निवास पर पहुंच गई, उसने भक्त रविदास जी के आगे प्रार्थना की-'महाराज ! कृपा करके आप मेवाड़

तक चलो। एक तो उधर के जिज्ञासु दर्शन करना चाहते हैं और दूसरा मीरां बाई बहुत संकट में है।'

रविदास जी ने पूछा–'मीरां बाई को क्या संकट आ गया ? वह तो प्रभु की दासी है।'

करमां बाई–'महाराज ! मीरां का भाई चंद्रभाग ही उसका शत्रु बन गया है। माता ने ज़हर दे दिया, मीरां आपके दर्शन करना चाहती है।'

अपने भक्तों की लाज रखने वाले प्रभु ने रविदास जी को प्रेरणा की तो वह मेवाड़ की तरफ चल पड़े। उनके साथ बहुत सारे श्रद्धालु भी साथ थे। मार्ग में आप कलयुगी जीवों को यूं उपदेश करते जा रहे थे–

नाथ कछूअ न जानऊ ।। मनु माइआ कै हाथि बिकानऊ ।।१।। रहाउ ।। तुम कहीअत हौ जगत गुर सुआमी ।। हम कहीअत कलिजुग के कामी ।।१।। इन पंचन मेरो मनु जु बिगारिओ ।। पलु पलु हरि जी ते अंतरु पारिओ ।।२।। जत देखऊ तत दुख की रासी ।। अजौ न पढ़हाई निगम भए साखी ।।३।। गोतम नारि ऊमापति सवामी ।। सीसु धरनि सहस भग गांमी ।।४।। इन दूतन खलु बधु करि मारिओ ।। बडो निलाजु अजहू नही हारिओ ।।५।। कहि रविदास कहा कैसे कीजै ।। बिनु रघुनाथ सरनि का की लीजै ।।६।।१।।

(पन्ना ७१०)

इस शब्द में भक्त रविदास जी ने जन–साधारण पुरुष की अवस्था ब्यान की है कि वह कैसे विनती करता है–हे करतार ! मैं तो कुछ भी नहीं जानता। न जप तप का ज्ञान है। आप तो जगत के स्वामी हैं। हम कलयुग के वासनावादी आदमी हैं।

पांचों (लोभ, मोह, अहंकार, क्रोध, वासना) ने मेरे मन को बिगाड़

दिया है। पल-पल इन्होंने हरि परमात्मा से दूर किया है। और ज्ञान के निकट नहीं आने दिया। जिधर भी देखते हैं दुःखों का ही साम्राज्य है। अभी भी बोध नहीं हुआ। आगे उदाहरण के तौर पर बताते हैं कि दुनिया के लोगों देखो ! पाप कर्म करने वाले बड़े पुरुष भी सजा से बच नहीं सके। ऋषि गौतम की पत्नी अहल्या तथा इन्द्र की कथा मिसाल है। देवराज इन्द्र कामुक होकर बेईमान हुआ तो ऋषि गौतम के श्राप से हज़ारों दुःख उठाए, शरीर पर निशान पैदा हो गए। पांचों ने ऐसा दुखी किया कि निर्लज्ज अभी भी विचार नहीं करता। भक्त जी कहते हैं कि हरि भजन के बिना परमात्मा की शरण लेने का कोई लाभ नहीं होता, इसलिए ईश्वर की शरण के लिए भजन अति आवश्यक है।

रविदास जी मेवाड़ की ओर रवाना हो गए। कई सैंकड़ों मील का मार्ग था। मार्ग में वह जहां भी पड़ाव करते, वहां ही सत्संग करके हरि भक्ति की वर्षा करते। दुखी लोग दुःखों के बारे पूछते। आत्मिक ज्ञानी तथा अभिलाषी आत्मा की बाबत पूछते। इस तरह ही सब कुछ होता जाता। भक्त जी की महिमा जगत में चारों तरफ बेहद होती।

इस तरह मार्ग में एक दिन भक्त रविदास जी अपने स्वामी परमात्मा से वचन-विलास करने लग गए। भक्त तथा परमात्मा के क्या संबंध होते हैं ? कैसे परमात्मा भक्तों के वश में हो जाता है ? इस बातचीत को जगत के आगे इस शब्द द्वारा प्रगट किया-

जउ हम बांधे मोह फास हम प्रेम बधनि तुम बाधे ॥
अपने छूटन को जतनु करहु हम छूटे तुम आराधे ॥१॥
माधवे जानत हहु जैसी तैसी ॥ अब कहा करहुगे ऐसी ॥१॥ रहाउ ॥
मीनु पकरि फांकिओ अरु काटिओ रांधि कीओ बहु बानी ॥
खंड खंड करि भोजनु कीनो तऊ न बिसरिओ पानी ॥२॥
आपन बापै नाही किसी को भावन को हरि राजा ॥

मोह पटल सभु जगतु बिआपिओ भगत नही संतापा ।।३।।
कहि रविदास भगति इक बाढी अब इह का सिउ कहीऐ ।।
जा कारनि हम तुम आराधे सो दुखु अजहू सहीऐ ।।४।।२।।

(सोरठि रविदास जी, पन्ना ६५८)

जिसका परमार्थ भक्त जी फरमाते हैं-हे ईश्वर ! जीव (हम) जगत में आए तो आप ने मोह के बंधन से जकड़ कर हमें बांध लिया पर हमने भी तुम्हें प्रेम रूप बंधनों के कारण बांधा है। हम तो आपको याद करके बंधनों से छूट गए, पर अब आप अपने छूटने का प्रबन्ध करो।

हे प्रभु ! जैसे हमारा प्यार आपके साथ है, वह आप ही जानते हो। अब क्या कहोगे, यह प्यार टूटने वाला नहीं। यह प्यार तो ऐसा है जैसे जल और मछली का प्यार होता है। शिकारी या मछली को खाने वाला जल में से पकड़ कर मछली को चीरता तथा टुकड़े-टुकड़े करता है, पकाता और खाता है, पर मछली पानी को नहीं भूलती। मछली खाने वाला पानी पीता रहता है। ऐसे ही हमारा प्यार आपके साथ है।

हे प्रभु ! आप विशेष किसी एक के नहीं जैसे हिन्दू ब्राह्मण कहते थे कि भक्ति का अधिकार केवल ब्राह्मण या उच्च जाति को है, निम्न जाति का कोई भी भक्त नहीं हो सकता। भक्त जी कहते हैं कि आप किसी के खास नहीं हैं, बल्कि हरेक को भक्ति करने का हक है। सारा जगत ऐसे मोह रूप के पर्दे से ढंका हुआ है कि उसको ज्ञान नहीं होता। पर भक्तों को दुःख नहीं होता। हे प्रभु ! आपकी भक्ति ही हमें बढ़ती दिखाई देती है। हम ने आपको याद करने के लिए अनेकों कष्ट सहन किए तथा आज भी सहन कर रहे हैं, ऐसा आपका प्यार है। हे दाता ! कृपा करते रहो जिससे जीवों का कल्याण हो, मोह का पर्दा दूर करो। यह मोह रूप बंधन तथा पर्दा ही दुखों

का घर है ।

एक जिज्ञासु के साथ एक धनवान पुरुष आया, वह किसी कारण डरने लग पड़ा था। उसने कई प्रकार के साधन अपनाए, पर उसका डर दूर नहीं हुआ। महापुरुषों से मेल करके उसको यह ज्ञान हुआ कि जन्म मरण के कष्ट जीव सहन करता है। भक्त जी का डेरा मार्ग में था कि धनवान ने भक्त जी के आगे प्रार्थना की कि जन्म-मरण का दुःख कैसे दूर हो ? त्रिकालदर्शी भक्त जी उसके मन की भावना को जान गए तथा उन्होंने इस बाणी के द्वारा उपदेश दिया-

दुलभ जनमु पुंन फल पाइओ बिरथा जात अबिबेकै ।। राजे इन्द्र समसरि ग्रिह आसन बिनु हरि भगति कहहु किह लेखै ।।१।। न बीचारिओ राजा राम को रसु ।। जिह रस अन रस बीसरि जाही ।।१।। रहाउ ।। जानि अजान भए हम बावर सोच असोच दिवस जाही ।। इंद्री सबल निबल बिबेक बुधि परमारथ परवेस नही ।।२।। कहीअत आन अचरीअत अन कछु समझ न परै अपर माइआ ।। कहि रविदास उदास दास मति परहरि कोपु करहु जीअ दइआ ।।३।।

(पन्ना ६५८)

भक्त रविदास जी का उपदेश

भक्त रविदास जी के पास एक ब्राह्मण आया। वह जूते की मुरम्मत करवाने आया था। भक्त जी ने देखा वह उच्च कुल, सुन्दर शरीर तथा नए वस्त्रों का अहंकार करता था, वह दूर-दूर रहे तथा भयभीत हो कि कहीं चमार के निकट न हो जाए, चमड़े से घृणा करे। जब बोले तो बड़े रोब के साथ। उसी समय रविदास जी के एक-दो श्रद्धालु आ गए। उन्होंने नमस्कार की तथा कहा, 'हे भक्त जी ! आपकी अपार कृपा है, जो दुःख दूर हो गए। मन शांत हो गया, हृदय की

जलन मिट गई ।... आप तो सदा ही प्रत्यक्ष राम रूप हो ।'

श्रद्धालु के मुख से यह वचन सुन कर उस ब्राह्मण को क्रोध आया तथा वह बोला, 'कैसे नीच पुरुष हो आप लोग, एक जूतियां मुरम्मत करने वाले का श्री राम चन्द्र जी से मुकाबला करते हो। ऐसा कैसे हो सकता है ? नीच पुरुष बड़े-छोटे का ख्याल नहीं करते ।'

ब्राह्मण की यह अहंकार भरी बात सुन कर श्रद्धालुओं को बुरा लगा। उन्होंने कड़ा उत्तर दिया तो भक्त जी ने उनको बोलने से रोका तथा कहा, 'पंडित जी ठीक कहते हैं', मैं गरीब चमार भला श्री राम जी के मुकाबले पर कैसे हो सकता हूं ! श्री राम तो मेरे मालिक हैं, जगत के कर्ता-धर्ता हैं । हरे राम राम राम !'

भक्त जी अपने राम के साथ एकसार हो गए, जूते की भी मुरम्मत करते जाएं। 'हाथ कार्य की तरफ और चित यार की तरफ ...।' वाह ! कैसा जीवन था ।

उस ब्राह्मण का ध्यान उधर पड़ा। उसने जब देखा तो वह हैरान हुआ। उसकी आंखों को ऐसे लगा, जैसे सचमुच ही धनुषधारी श्री राम जी बैठे थे। वह भीलनी के बेर खा रहे थे, उसके मुंह से एकदम आश्चर्य से निकला, 'राम ! हे राम !'

भक्त जी ने जूता तैयार किया तथा कहा, 'लीजिए पंडित जी ! यह है आपका जूता, पहन कर देखो ! और तो नहीं करना ?'

ब्राह्मण की सुधबुध ठीक हुई। उसने जूता पैरों में पहना। दो पैसे फैंक कर भाग गया। वह ब्राह्मण था तथा उसको अहंकार था। उसके जाने के बाद उसकी मनोदशा का अनुभव करके भक्त जी ने इस प्रकार वचन किया-

तुझहि सुझंता कछू नाहि ।। पहिरावा देखे ऊभि जाहि ।। गरबवती का नाही ठाउ ।। तेरी गरदनि ऊपरि लवै काउ ।।१।। तूं कांई गरबहि बावली ।। जैसे भादउ खूंबराज तू तिस ते खरी

उतावली ।।१।। रहाउ ।। जैसे कुरंक नही पाईओ भेदु ।। तनि सुगंध ढूढै प्रदेसु ।। अप तन का जो करे बीचारु ।। तिसु नही जमकंकरु करे खुआरु.।।२।। पुत्र कलत्र का करहि अहंकारु ।। ठाकुरु लेखा मगनहारु ।। फेड़े का दुखु सहै जीउ ।। पाछे किसहि पुकारहि पीउ पीउ ।।३।। साधू की जउ लेहि ओट ।। तेरे मिटहि पाप सभ कोटि कोटि ।। कहि रविदास जु जपै नामु ।। तिसु जाति न जनमु न जोनि कामु ।।४।।१।।

(बसंतु रविदास जी, पन्ना ११९६)

भक्त जी के वचन का भावार्थ यह है कि मेरी देह तुम्हें कुछ पता नहीं लगता, अपना पहनावा तथा अपने आप को सुंदर देख कर अहंकार करती जा रही हो, यह अहंकार तो ठीक नहीं, अहंकारी आत्मा को कहीं कोई जगह नहीं देता। तुम्हारी गर्दन पर तो कौआ बोलता है भाव यम सिर पर खड़ा काल का हुक्म सुनने को तैयार है।

वाह ! पागल देह पर आत्मा अहंकार करती है, पर कभी देखा है भादों के महीने में मशरूम उगती हैं, पर उगने की शीघ्रता से नष्ट होने की ज्यादा शीघ्रता होती है। भाव कि जीव मशरूम की तरह है। पता नहीं कब नष्ट हो जाना है। अहंकार करने वाला जीव जंगल के उस हिरन की तरह है, जिसे यह बोध नहीं होता कि कस्तूरी तो उसके पास है, पर ढूंढता बाहर फिरता है, क्योंकि सुगंधि जो बाहर से आती अनुभव होती है। इसी तरह जो अपने तन का विचार करे, यह क्या है ? कैसे आया ? कैसे करेगा ? तो उस पुरुष को कभी यम परेशान नहीं करता। भाव वह नरकों का भागी नहीं बनता, वह तो स्वयं ही सुधर जाता है।

आमतौर पर जो जीव अपने तन का अहंकार करता है तो वह साथ ही अपनी सुन्दर पत्नी, कमाऊ पुत्र या रिश्तेदारों का अहंकार कर लेता है, पर यह नहीं जानता कि यह सब के सब साथ चलने वाले

नहीं। सब अपने-अपने कर्म के मालिक हैं। परमात्मा ने लेखा अकेले-अकेले से मांगना है। वह मांगने वाला है। जो कर्म किए हैं, उसका फल भोगना है। फिर बताओ किसे आवाज़ दोगे। 'पति जी ! पति जी ! किसी ने भी नहीं आना।

हे जीव ! सबसे अच्छी बात है कि अहंकार को त्याग कर अच्छे साधू-संत का आसरा ले। साधू की संगत से तुम्हारा अहंकार मिट जाएगा, नाम सुमिरन से पाप मिट जाएंगे, पाप भी वह जो करोड़ों ही करोड़ों हैं। भाई ! जो नाम जपता है, वही पार उतरता है। नाम जपने वाले की न जाति, न गोत्र परखी जाती है।

वह ब्राह्मण तो चला गया पर दूसरे श्रद्धालु पास बैठे थे। उन्होंने भक्त जी के पास से ज्ञान उपदेश सुना। इसी तरह रास्ते पर जाते अनेकों पुरुष आ बैठते। कईयों को यह विश्वास था कि रविदास जी के दर्शन करने से ही दुःख निवृत हो जाते हैं। लोग सुनते तथा दूर-दूर तक यश ले जाते थे। कई बार स्वामी रामानंद जी गुसाईं भी आते तथा रविदास जी के साथ वचन विलास करके चले जाते, पर भेद न खोलते वह वृद्ध हो चुके थे। शाम को रविदास जी भी काम बंद करके उनके डेरे में जाकर सत्संग सुनते थे।

नहावन आया संग मिल बानारस कर गंगा थेटा ।
कढ कसीरा सउपिआ रविदासै गंगा की भेटा ।
लगा पूरब अभीच दा डिठा चलित अचरज अमेटा ।
लईआ कसीरा हथ कढ सूत, ईक जिउं ताना पेटा ।
भगत जना हरि मां पिउ बेटा ।

काशी में बड़ा भारी मेला था। उसको अभीच नक्षत्र पर्व कहा जाता था। भाई गुरदास जी के उपरोक्त कथन के अनुसार उस पर्व पर लोगों तथा श्रद्धालुओं के साथ रविदास जी भी गंगा स्नान करने के लिए उठ कर आ गए। उनके पास एक कसीरा (पैसा) था।

रविदास जी तथा उनकी धर्म पत्नी गंगा स्नान करने लगे। उस समय बहुत भीड़ थी, हज़ारों स्त्री, पुरुष स्नान करते हुए अपनी आर्थिक दशा के अनुसार पूजा कर रहे थे तथा चढ़ावा चढ़ा रहे थे। कुछ न कुछ गंगा की भेट करना शुभ समझा जाता था।

रविदास जी ने कसीरा निकाला पर साथ ही मन में यह इच्छा धारण की कि कसीरा फैंकना नहीं, यदि गंगा मैया शक्तिशाली है तो वह अपना हाथ ऊंचा करके कसीरा पकड़े। गंगा मैया ने राम भक्त के मन की इच्छा को जान लिया। उसके कानों में ऐसी वाणी हुई, जिससे प्रगट हुआ, हे रविदास ! तेरा कसीरा स्वीकार है। लोगों का सोना तथा मोहरें स्वीकार नहीं। भगवान भक्ति भावना का भूखा है, उसको धनवान अच्छे नहीं लगते।

रविदास जी ने कसीरा निकाला। हाथ में लेकर गंगा जल में गया। स्नान की डुबकी लगा कर उसने गंगा को कसीरा पकड़ाने के लिए हाथ आगे बढ़ाया तो उधर से गंगा की लहरों में से हाथ निकला, वह हाथ गंगा का था। गंगा अपनी भेंट मांग रही थी। प्रसन्नता व्यक्त कर रही थी। सब ने उस हाथ को देखा। पंडित तथा बड़े सेठों ने, जो यज्ञ तथा भंडारे करवाने आए थे, उनको गंगा के दर्शन न हुए। रविदास जी खुश होकर नाचने लग पड़े। उनके जीवन में एक उल्लास आया।

उस समय कहते हैं कि सारे बनारस के मंदिरों के घण्टे अपने आप बजने लग पड़े। घंटियों तथा घंटों की घनघोर ने लोगों के दिल दहला दिए, क्योंकि वह अपने आप बज रहे थे। भाई गुरदास जी कहते हैं, भक्त की लाज भगवान ने रखी तथा इस तरह कहना माना, जैसे बालक का कहना पिता मानता है। भाव पिता बालक की मांगें पूरी करता है।

उस दिन से रविदास जी की भक्ति प्रगट हो गई। सभी उनको

भक्त जी ! भक्त जी ! कह कर बुलाने तथा आदर करने लगे।

भक्त रविदास जी तथा पारस

कहा भइओ जउ तनु भइओ छिनु छिनु ।। प्रेमु जाइ तउ डरपै तेरो जनु ।।१।। तुझहि चरन अरबिंद भवन मनु ।। पान करत पाईओ पाइओ रामइआ धनु ।।१।। रहाउ ।। संपति बिपति पटल माइआ धनु ।। ता महि मगन होत न तेरो जनु ।।२।। प्रेम की जेवरी बाधिओ तेरो जन ।। कहि रविदास छूटिबो कवन गुन ।।३।।४।।

(पन्ना ४८६)

जिसका परमार्थ है-भक्त रविदास जी भक्ति में लीन कर्म करते हुए प्रभु को कहते जाते थे-हे परमात्मा ! बेशक तन कट जाए तुम्हारा भक्त नहीं डरता, पर प्यार न छूटे। डर प्यार का है। मेरा मन तो तुम्हारे चरण कंवल रूप घर में पहुंच गया है। हे राम ! तुम्हारी भक्ति रूप पर्दा है, वह प्राप्त होने पर जगत पर जो माया रूपी पर्दा है, वह तुम्हारे भक्त पर कोई असर नहीं करता। भाव माया से प्रेम नहीं करता। तुम्हारा भक्त तो प्यार की डोरी से बंधा है। भक्त रविदास जी कहते हैं, यही डर है कि तुम्हारा भक्त कैसे बचे इस दुनिया रूपी भवसागर से।

जब आप ऐसे सोच-विचारों में थे तो भगवान ने एक अद्भुत ही कौतुक किया। कहते हैं, एक साधू आया। कहा जाता है कि वह वास्तव में ईश्वर था। भक्त की परीक्षा के लिए आया था।

यह भी हो सकता है कि कोई दयावान साधू-महात्मा ही हो, जिसने रविदास भक्त जी की निर्धनता दूर करने की दिल में इच्छा धारण की हो।

वह साधू रविदास भक्त जी के पास आया। लम्बी सुनहरी दाढ़ी, भगवा भेष, गले में माला थी। उसको रविदास जी ने आसन दिया

और वह बैठ गया, और पूछने लगा-'हे भक्त ! निः संदेह तुम मेहनत करते हो फिर भी तुम्हें नुक्सान रहता है। संगत भी करते हो ? माया का कैसे गुजारा होता है ?'

रविदास जी-'हे महाराज जी ! जिस हालत में भगवान रखता है, उसी में रहना ठीक है। मेहनत की कमाई द्वारा खाते हैं, बहुत आनंद है, झोंपड़ी हो या शीश महल दिन ही काटने हैं। जितने श्वास राम ने दिए हैं उतने भोग जाना है। उसके नाम का धन पास रहे तो वही ठीक है।

साधू-'मैं आपके नाम की महिमा सुन कर आया हूं पर आपकी आर्थिक दशा बुरी देख कर ख्याल आया है कि आपकी सेवा करूं। मेरे पास पारस है यह रख लो।

रविदास जी-'पारस का क्या लाभ?'

साधू-'पारस ऐसी वस्तु है, जो लोहे से छुआ जाए तो लोहा सोना बन जाता है। वह सोना बाजार में बेच कर पैसे कमाए जाते हैं। जूतियां मुरम्मत करते हो, इससे लाभ नहीं होता। पारस से एक दिन में ही अमीर हो जाओगे।

रविदास जी-'मायाधारी तो अंधा, बहरा होता है। माया की आवश्यकता नहीं, परिश्रम में ही बरकत है।

साधू-'देखो भक्त जी ! माया की हरेक मनुष्य को जरूरत है। माया से बड़े-बड़े महल, मंदिर तथा किले बनते हैं। उन किलों, मंदिरों की शोभा बढ़ती है तथा यश होता है। बड़े भंडारे किए जाते हैं, देखते नहीं कितने लोग माया एकत्रित करते हैं। काशी के पंडित तो देखो मारो-मार करते धन एकत्रित करते हैं। बोलो ! राम भक्त ! दूं पारस !'

साधू ने गोल पत्थर का टुकड़ा निकाला, वह रविदास जी के आगे किया। उसको दिखाया, पर भक्त तो परमात्मा के नाम सिमरन से ही प्रसन्न था। उसने उत्तर दिया-'महाराज ! जितनी माया अधिक

आती है, उतनी बुद्धि भ्रष्ट होती है। अहंकार आता है, शरीर में दोष बढ़ते हैं। हम देखते हैं कि ऊंचे मंदिरों के पुजारी अहंकारी हैं। महलों वाले राजा अहंकारी हैं। जिस तरफ देखो आपको अहंकार, लालच, वासना की बाढ़ बहती नज़र आएगी। आप हमें इस झोंपड़ी में ही राम नाम का सुमिरन करने दें। धर्म पत्नी भी गरीबी में ठीक है। राम की कृपा है।'

साधू रूपी भगवान ने हठ किया। पारस उसके पास रख कर उठ कर अपने मार्ग चल पड़ा। उसके जाने के बाद भक्त ने पारस उठा कर छत्त में रख दिया। छत्त में नरकट तथा बांस थे। उन्होंने तो सोना बनना नहीं था। रविदास जी की धर्म पत्नी कहीं बातें सुनती रही थी। साधू के जाने के पश्चात उसने रविदास जी के पास आकर पूछा।

'जी ! ... साधू पारस, सोने, मंदिरों की क्या बात करता था ?'

रविदास जी-'राम का नाम छुड़वाता तथा धन-दौलत का लालच दे रहा था। कहता था सोना बना कर बेचो, अमीर बन जाओ, मंदिर तथा महल बनाओ।'

पत्नी-'सोना किससे बनना था ?'

रविदास-सोना बनना था पारस के साथ। वह रख गया और मैंने उठा कर छत्त में रख दिया है, हमारे किस योग्य ? वह काम नहीं करना चाहिए, जो राम नाम से दूर करे। राम नाम ही सर्वोपरि है।

कई साल के बाद वह साधू फिर आया। रविदास जी उसी त्रिण की झोंपड़ी में बैठे थे तथा पहले की तरह ही अपना काम कर रहे थे। कपड़े, बर्तन, चमड़े तथा हथियारों में कोई भी फर्क नहीं पड़ा था, सारी जगह वैसी ही थी। साधू ने पूछा, 'भक्त जी! मैं आपको पारस दे गया था।'

रविदास जी-'हां, महाराज ! आप मुझे पारस दे गए थे, वह उठा कर अमानत समझ कर छत्त में रखा है, ले जाओ। वहीं पड़ा है,

एक काला पत्थर ।

यह सुन कर साधू मन ही मन बहुत खुश हुआ तथा उसने पारस उठा लिया। पारस को पकड़ कर भक्त जी की तरफ देख कर पूछा- 'भक्त जी ! आपकी वास्तविक इच्छा क्या है ?

रविदास जी ने साधू की तरफ देखा। सूई तथा आर हाथ से रख कर उन्होंने वचन किया-

हरि हरि हरि हरि हरि हरे ।। हरि सिमरत जन गए निसतरि तरे ।।१।। रहाउ ।।

हरि के नाम कबीर उजागर ।। जनम जनम के काटे कागर ।।१।।

निमत नामदेउ दूधु पीआइआ ।। तउ जग जनम संकट नही आइया ।।२।।

जन रविदास राम रंगि राता ।। इउ गुर परसादि नरक नही जाता ।।३।।

(पत्रा ४८७)

रविदास जी का भक्ति की तरफ दृढ़-विश्वास देख कर वह साधू उठ बैठा तथा पारस को हाथ में मलता हुआ बोला, 'ठीक है रविदास जी ! कोई जन्म के कारण ऊंचा नहीं होता, बल्कि कर्म के कारण ऊंचा बनता है। आपका दिल साफ है तथा भक्ति शुद्ध हृदय से कर रहे हो, अवश्य ही कल्याण होगा।'

ऐसा वचन करता हुआ वह साधू वहीं अलोप हो गया। उसे अलोप देख कर रविदास जी समझ गए कि स्वयं भगवान आए थे। उनको पश्चाताप हुआ कि जी भर कर दर्शन क्यों न कर सके, उस दिन से रविदास जी के पास रिद्धियां-सिद्धियां आ गईं।

भक्त रविदास जी के पक्के मंदिर बनने

तुम चंदन हम इरंड बापुरे संगि तुमारे बासा ।। नीच रूख ते ऊच भए है गंध सुगंध निवासा ।।१।। माधउ सतुसंगति सरनि तुम्हारी ।। हम अउगन तुम्ह उपकारी ।।१।। रहाउ ।। तुम मखतूल

सुपेद सपीअल हम बपुरे जस कीरा ।। सतसंगति मिलि रहीऐ
माधउ जैसे मधुप मखीरा ।।२।।

(पन्ना ४८६)

इस तरह प्रार्थनाएं करते हुए भक्त रविदास जी अपना कर्म करते रहते थे कि भगवान ने इच्छा की कि वह अपने भक्त की शान ऊंची करे। उन्होंने देख लिया था कि भक्त माया को तो हाथ नहीं लगाता। वह सदा विनम्र तथा त्याग में रहता है। इस तरह कितने ही दिन व्यतीत हो गए तो एक दिन भगवान ने कौतुक रचना शुरू कर दिया। वह कौतुक इस तरह हुआ।

रविदास जी ने छोटी-सी लकड़ी की चौकी पर देवता की पत्थर की मूर्ति रखी हुई थी, उस मूर्ति को सुन्दर वस्त्र पहना कर सजाया था, नीचे आसन बिछा था। रोजाना जंगल के बाग में से फूल लाकर चढ़ाए जाते, दोनों समय पूजा होती। रविदास जी का नित्य कर्म यह था कि बहुत रात रहते उठ कर झोंपड़ी को साफ करके, झाड़ू तथा पोचा फेरते, दोनों प्राणी स्नान करते। स्नान करने के बाद देवता की मूर्ति को स्नान कराया जाता तथा आसन साफ किया जाता। फिर पूजा शुरू होती। मूर्ति के आगे बैठे ही सूरज उदय हो जाता, सारा दिन हाथ कार्य की तरफ तथा मन भगवान की तरफ लगा रहता।

पारस वापिस लेकर भगवान के लुप्त होने के तीसरे दिन बाद जब रविदास जी ने देवता का आसन झाड़ा तो नीचे से सोने की मोहरें निकलीं। उनकी छनकार तथा चमक मायाधारी के दिल को तो खुशी तथा मस्ती में मग्न कर देती, पर रविदास जी की आत्मा पर कोई भी असर न हुआ। उसने ठीकरियों की तरह मोहरें उठा कर एक तरफ रख दीं। स्वयं पूजा करने में व्यस्त हो गए। उन मोहरों की तरफ ध्यान न दिया। यह संशय जरूर था कि वह मोहरें आई कहां से ?

यह कौतुक एक दिन का नहीं था, रोज़ सुबह जब भक्त जी देवता

का आसन साफ करते तो उनको पांच मोहरें मिलतीं। वह उनको उठा कर झरोखे में रख देते। बहुत-सी मोहरें इकट्ठी हो गईं, भक्त ने उनका प्रयोग नहीं किया। सोने को मिट्टी के बराबर समझा। भगवान ने जब देखा रविदास मोहरें देख कर डगमगाया नहीं तो रात को सपने में कथन किया-हे रविदास ! इन सोने की मोहरों को झरोखे में मत रखो, यह तुम्हारे प्रयोग करने के लिए हैं। तुम्हारा देवता, जिसकी तुम पूजा करते हो तभी प्रसन्न रह सकता है अगर इन सोने की मोहरों से देवता के लिए मंदिर बनवाओ, मूर्ति बड़ी तथा सुन्दर रखो, आए जिज्ञासुओं तथा श्रद्धालुओं के लिए धर्मशाला तैयार करो।

यह स्वप्न देख कर रविदास घबरा कर उठ बैठा। उसकी नींद खुल गई। 'राम ! राम ! जिह्वा रटने लग पड़ी। अपनी धर्म पत्नी को हिला कर उठा लिया। सपने में सुने सारे वाक अपनी धर्म पत्नी को सुना दिए। वह गुणवंती समझदार थी। भगवान से डरने वाली थी। उसने हाथ जोड़ कर सलाह दी-स्वामी जी ! जैसे भगवान की इच्छा है, हमें वैसे करना चाहिए। गुरु (रामानंद) जी से पूछ लेना चाहिए। भगवान की कृपा है। स्वामी जी ! भगवान दयालु हैं। भगवान को नाराज नहीं करना चाहिए।

'अच्छा ! जैसी प्रभु की इच्छा है, वैसे ही करूंगा।' रविदास जी ने उत्तर दिया।

सुबह हुई, एक सेठ जी आकर हाज़िर हुए। उन्होंने मोहरों की थैलियां रविदास जी के आगे रख कर माथा टेका। माथा टेकने के बाद हाथ जोड़ कर प्रार्थना की-'हे प्रभु ! आपकी कृपा से मेरे घर बालक ने जन्म लिया है। मैं पुत्र का मुख देखने के लिए मछली की तरह तड़प रहा था। आपकी शोभा सुनी थी। एक दिन आपकी झोंपड़ी के आगे से निकलते हुए मन ही मन में कामना की कि मेरे घर पुत्र हो तो इस भक्त के लिए मंदिर बनवा दूंगा। दस महीने के

बाद मेरी इच्छा पूरी हुई है। गुलाब के फूल जैसा बालक मेरे घर आया है। मैं यह धन बांध कर हाज़िर हूं। मेरी कामना पूरी करने के लिए बख्शो। आज्ञा करो।'

रविदास जी की झोंपड़ी के पास खुली जगह पड़ी थी, उसको खरीद कर मंदिर बनने शुरू हो गए। एक देवता का मंदिर तैयार हुआ तथा एक रविदास जी और एक आए गए साधुओं व श्रद्धालुओं के रहने के लिए शानदार आवास तैयार हुआ। संगमरमर की देव मूर्तियां तैयार करवाई गईं। बढ़िया आभूषण पहनाए गए। जो भी देव मूर्ति के दर्शन करता वही वाह ! वाह ! कहता। रविदास की धर्म पत्नी खुशी तथा हैरानी में मग्न थी। वह भी राम सिमरन करने लगी, उसका जीवन बदल गया। रविदास के माता-पिता खुश थे कि ऊंची कुल के ब्राह्मण की तरह उनके पुत्र का आदर हो रहा था। यह चमत्कार करते हुए आप ज्योति जोत समा गए। आपकी भक्ति अपार है।

भक्त पीपा जी

सतिगुरु नानक देव जी महाराज के अवतार धारण से कोई ४३ वर्ष पहले गगनौर (राजस्थान) में एक राजा हुआ, जिसका नाम पीपा था। अपने पिता की मृत्यु के बाद वह राज तख्त पर विराजमान हुआ। वह युवा तथा सुन्दर राजकुमार था। वजीरों की दयालुता के कारण वह कुछ वासनावादी हो गया तथा उसने अच्छी से अच्छी रानी के साथ विवाह कराया। इस तरह उसकी दिलचस्पी बढ़ती गई तथा कोई बारह राजकुमारियों के साथ विवाह कर लिया। उनमें से एक रानी जिसका नाम सीता था, अत्यंत सुन्दर थी, उसकी सुन्दरता तथा उसके हाव-भाव पर राजा इतना मोहित हुआ कि दीन-दुनिया को ही भूल गया। वह उसके साथ ही प्यार करता रहता, जिधर जाता उसी को देखता रहता। वह भी राजा से अटूट प्यार करती।

जहां पीपा राजा था और राजकाज के अतिरिक्त स्त्री रूप का चाहवान था, वहीं देवी दुर्गा का भी उपासक था, उसकी पूजा करता रहता। दुर्गा की पूजा के कारण अपने राजभवन में कई साधुओं तथा भक्तों को बुला कर भजन सुनता और भोजन कराया करता था। राजभवन में ज्ञान चर्चा होती रहती। उस समय रानियां भी सुनती तथा साधू और ब्राह्मणों का बड़ा आदर करतीं, उनका सिलसिला इसी तरह चलता गया। यह सिलसिला इसीलिए था कि उसके पूर्वज ऐसा करते आ रहे थे तथा कभी भी पूजा के बिना नहीं रहते थे। उन्होंने राजभवन में मंदिर बनवा रखा था।

उस समय भारत में वैष्णवों का बहुत बोलबाला था। वह मूर्ति पूजा के साथ-साथ भक्ति भाव का उपदेश करते थे। शहर में वैष्णवों की एक मण्डली आई। राजा के सेवकों ने उनका भजन सुना तथा राजा के पास आकर प्रार्थना की--महाराज ! शहर में वैष्णव भक्त आए हैं, हरि भक्ति के गीत बड़े प्रेम तथा रसीली सुर में गाते हैं।

यह सुन कर राजा ने उनके दर्शन के लिए इच्छा व्यक्त की। उसने अपनी रानियों से कहा। रानी सीता बोली, 'महाराज ! इससे अच्छा और क्या हो सकता है ? अवश्य चलो।'

राजा पीपा पूरी सलाह तथा तैयारी करके संत मण्डली के पास गया। उसने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि 'हे भक्त जनो ! आप मेरे राजमहलों में चरण डाल कर पवित्र करें। तीव्र इच्छा है कि भगवान महिमा श्रवण करें तथा भोजन भंडारा करके आपकी सेवा का लाभ प्राप्त हो। कृपा करें प्रार्थना स्वीकार करो।'

संत मण्डली के मुखी ने आगे से उत्तर दिया-'हे राजन ! यदि आपकी यही इच्छा है तो ऐसा ही होगा। सारी मण्डली राज भवन में जाने को तैयार है। भंडारे तथा साधुओं के लिए आसन का प्रबन्ध करो।'

पीपा एक राजा था। उसने तो आदेश ही देना था। सेवकों को आदेश दिया। सारे प्रबन्ध हो गए। एक बहुत खुली जगह में फर्श बिछ गए तथा संत मण्डली के बैठने का योग्य प्रबन्ध किया। भोजन की तैयारी भी हो गई।

संत मण्डली ने ईश्वर उपमा का यश किया। भजन गाए तो सुन कर पीपा जी बहुत प्रसन्न हुए। संत भी आनंद मंगलाचार करने लगे, पर जब संतों को पता लगा कि राजा सिर्फ मूर्ति पूजक तथा वासनावादी है तो उनको कुछ दुःख हुआ। उन्होंने राजा को हरि भक्ति की तरफ लगाना चाहा। उन्होंने परमात्मा के आगे शुद्ध हृदय से आराधना की कि राजा दुर्गा की मूर्ति की जगह उसकी महान शक्ति का पुजारी बन जाए।

जैसे सतिगुरु जी का हुक्म है-

हम ढाढी हरि प्रभ खसम के नित गावह हरि गुण छंता ॥
हरि कीरतनु करह हरि जसु सुणह तिसु कवला कंता ॥
हरि दाता सभु जगतु भिखारीआ मंगत जन जंता ॥
हरि देवहु दानु दइआल होइ विचि पाथर क्रिम जंता ॥
जन नानक नामु धिआईआ गुरमुखि धनवंता ॥२०॥

(सोरठि वार मः ३, पन्ना ६५०)

उन हरि भक्तों की प्रार्थना प्रभु परमात्मा ने सुनी। राजा पीपा को अपना भक्त बनाने के लिए नींद में एक स्वप्न द्वारा प्रेरित किया। उस सपने की प्रेरणा से राजा पर विशेष प्रभाव पड़ा।

राजा को स्वप्न आना

भक्त मण्डली में से उठ कर राजा पीपा अपने आराम करने वाले शीश महल में आ गया। वह अपनी रानी सीता के पास सो गया, जैसे पहले वह सोया करता था। उसकी शैय्या मखमली थी तथा

उस पर विभिन्न प्रकार के फूल और खुशबू फैंकी हुई थी। उसको दीन दुनिया का ज्ञान नहीं था। उस रात राजा को एक स्वप्न आया। वह स्वप्न इस तरह था-

स्वप्न में जैसे राजा अपनी रानी सीता के साथ प्रेम-क्रीड़ा कर रहा था। वह बड़ी मस्ती के साथ बैठे थे कि शीश महल के दरवाज़े अपने आप खुल गए, उनके खुलने से एक डरावनी सूरत आगे बढ़ी, जैसे कि राजा ने सुना था कि दैत्य होते हैं तथा दैत्यों की सूरत के बारे में भी सुना था, वैसी ही सूरत उस दैत्य की थी। राजा डर गया तथा उसके मुंह से निकला, 'दैत्य आया ! दैत्य आया ! वह तो नरसिंघ के जैसा था। राजा के पास आकर उस भयानक शक्ति ने कहा- 'हे राजा ! सुन लो ! दुर्गा की पूजा न करना, नहीं तो तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।' ऐसा संदेश दे कर वह शक्ति पीछे मुड़ गई तथा दरवाज़े के पास जाकर अदृश्य हो गई। उसके जाने के पश्चात राजा इतना भयभीत हुआ कि उसकी नींद खुल गई। शरीर पसीने से लथपथ था तथा उसने अपनी पत्नी सीता को जगाया, जो कि आराम से सुख की नींद सोई थी।

'हे रानी ! उठो, शीघ्र उठो।'

रानी उठी तथा उसने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की, हे नाथ ! क्या आज्ञा है ?

पीपा-'आओ ! दुर्गा के मंदिर चलें।'

सीता-'इस समय नाथ ! अभी तो आधी रात है। दूसरा स्नान ?'

पीपा-'कुछ भी हो ! अभी जाना है, चलो ! मेरा हृदय धड़क रहा है। बहुत भयानक स्वप्न आया है।'

पतिव्रता नारी सीता उठी। राजा के साथ चली तथा दोनों मंदिर पहुंचे। राजा पीपा ने जाते ही दुर्गा देवी की मूर्ति के आगे स्वयं को समर्पित किया तथा आगे से आवाज़ आई। 'मैं पत्थर हूं-हरि भक्ति

के लिए संतों के साथ लगन लगाओ। ...भाग जाओ।' ऐसा कथन सुन कर राजा उठ बैठा। वह एक तरह से डर गया था। वह सीता को साथ लेकर वापिस अपने महल आ गया। संतों से बात करते दिन निकल गया तथा सुबह हुई तो स्नान करके पूजा की सामग्री लेकर संतों को मिलने जाने के लिए तैयार हो गए।

संतों से मिलन

संत उधरन दइआलं आसरं गोपाल कीरतनह ॥
निरमलं संत संगेन ओट नानक परमेसुरह ॥१॥

स्वप्न में हुए कथन से राजा के जीवन में एक बहुत बड़ा परिवर्तन आया। वह तो आहें भरने लगा। दुर्गा के मंदिर का पुजारी आया। उसने प्रार्थना की। राजा ने दुर्गा के मंदिर में जाने से इन्कार कर दिया तथा संतों की तरफ चल पड़ा। जितनी जल्दी हो सका, वह उतनी जल्दी पहुंच गया तथा संतों के मुखिया के पास जा कर विनती की कि 'महाराज ! मुझे हरि नाम सिमरन का मार्ग बताएं। आपके दर्शन करने से मेरे मन में वैराग उत्पन्न हो गया है। रात को नींद नहीं आती, न दिन में चैन है। कृपा करो। हे दाता ! मैं तो एक भिखारी हूं।'

राजा की ऐसी व्याकुलता देख कर संतों के मन में दया आई, वह कहने लगा-'हे राजन ! यह तो परमात्मा की अपार कृपा है जो आपको ऐसा वैराग उत्पन्न हुआ। पर जिसने बख्शिश करनी है, वह यहां नहीं है, वह तो काशी में है, उनका नाम है गुरु रामानंद गुसाईं। उनके पास चले जाओ।'

यह सुन कर राजा ने अपनी रानी सीता सहित काशी जाने की तैयारी कर ली। वह काशी की तरफ चल पड़ा था। उसका मन बेचैनी से इस तरह पुकार रहा था-

मेलि लैहु दइआल ढहि पए दुआरिआ ॥

रखि लेवहु दीन दइआल भ्रमत बहु हारिआ ।।
भगति वछलु तेरा बिरदु हरि पतित उधारिआ ।।
तुझ बिनु नाही कोई बिनउ मोहि सारिआ ।।
करु गहि लेहु दइआल सागर संसारिआ ।।१६।।

(जैतसरी म: ५, पन्ना ७०९)

राजा पीपा की ऐसी अवस्था हो गई, वह अधीनता से ऐसे निवेदन करने जाने लगा–हे दाता ! कृपा करके दर्शन दीजिए मैं कंगाल आपके द्वार पर आकर नतमस्तक पड़ा हूं, अब और तो कोई आसरा नहीं । कृपा करो, प्रभु ! हे दातार ! आप भक्तों के रक्षक मालिक हो, आपका विरद पतितों का उद्धार करना है। आपके बिना कोई नहीं, आप दातार हो, अपना हाथ देकर मेरी लाज रखो तथा भव–सागर से पार करो ! दया करो दाता, आपके बिना कोई भव–सागर से पार नहीं कर सकता । ...ऐसी व्याकुल आत्माओं के लिए सतिगुरु महाराज की बाणी है ।

इस तरह बैचेनी से प्रभु की तरफ ध्यान करता हुआ पीपा चल पड़ा । उसको ऐसी लगन लगी कि उसको सीता के तन का प्यार भी कम होता नज़र आने लगा। वह ध्यान में मग्न काशी पहुंच गया।

त्रिकालदर्शी स्वामी रामानंद भी प्रातःकाल गंगा स्नान करने जाते थे। जब गंगा स्नान करके आ रहे थे तो उन्होंने सुना कि गगनौर का राजा पीपा भक्त काशी में आया है तथा उनको ही ढूंढ रहा है। उन्होंने यह भी देखा कि उनके आश्रम के पास शाही ठाठ थी। हाथी, घोड़े, छकड़े तथा तम्बू लगे थे। सेवक से पूछा तो उसने भी कहा–'महाराज ! गगनौर का राजा आया है ।'

स्वामी जी ने आश्रम के बाहरले फाटक को बंद करवा दिया तथा आज्ञा की कि 'दर्शन के लिए आज्ञा लिए बिना कोई न आए। इस तरह ताकीद की, उस पर अमल हो गया । राजा पीपा जब दर्शनों के लिए चला तो फाटक बंद मिला और आगे से जवाब मिला, 'गुरु

की आज्ञा लेना आवश्यक है, ऐसा करना होगा ।'

आज्ञा प्राप्त करने के लिए सेवक गया। वह वापिस आया तो उसने संदेश दिया–'हे राजन ! स्वामी जी आज्ञा करते हैं, हम गरीब हैं, राजाओं से हमारा क्या मेल, अच्छा है वह किसी मंदिर में जाकर लीला करें, राजाओं से हमारा मेल नहीं हो सकता ।'

राजा पीपा की उत्सुकता काफी बढ़ चुकी थी। उसने उसी समय हुक्म दिया, 'जो कुछ पास है, सब बांट दिया जाए। हाथी, घोड़े, सामान मंत्री वापिस ले जाएं तथा तीन कपड़ों में सीता तथा हम रहेंगे ।'

पीपा के कर्मचारियों ने ऐसा ही किया। सीता तथा राजा के सिर्फ तन के वस्त्र रह गए। हाथी, घोड़े, तम्बू सब वापिस भेज दिए। धन पदार्थ गरीबों को बांट दिया। प्यार रखा प्रभु से। उत्सुकता कायम रखी हृदय में। फाटक के आगे जा खड़ा हुआ। फिर प्रार्थना करके भेजी, 'महाराज आपके दर्शन की अभिलाषा, आत्मा बहुत व्याकुल है ।'

स्वामी जी ने अभी और परीक्षा लेनी थी कि कहीं यूं ही तो नहीं करता। उन्होंने कह कर भेजा, 'बहुत जल्दी में है तो कुएं में छलांग जा मारे ।' वहां से जल्दी ही परमात्मा के दर्शन हो जाएंगे। सेवक ने ऐसा ही कहा, पीपा जी ने सुना।

पीपा भक्त तो उस समय गुरु–दर्शन के लिए इतना उत्सुक था कि वह अपने तन को चिरवा सकता था। सुनते ही वह कोई कुंआ ढूंढने के लिए भाग उठा। उसके पीछे उसकी सत्यवती नारी सीता भी दौड़ पड़ी। वह कुएं में गिरेगा। कुएं में गिरने से शीघ्र दर्शन हो सकते हैं। ऐसा बोलता हुआ वह दौड़ता गया, शोर मच गया।

उधर स्वामी रामानंद जी ने अपनी आत्मिक शक्ति से देखा कि पीपा जी को सत्यता ही 'हरि' से प्यार हो गया है, भक्त बनेगा, इसलिए उन्होंने ऐसी माया रचाई कि पीपा जी को कोई कुआं ही न मिला।

वह भागता फिरता रहा। रानी उसके पीछे-पीछे। धीरे-धीरे वह खड़ा हो गया। उसको स्वामी रामानंद जी के भेजे हुए शिष्य मिले जो वहां पहुंच गए। उन्होंने जाकर गुरु जी का संदेश पीपा जी को दिया-

'हे राजन ! आपको गुरु जी याद कर रहे हैं।'

'गुरु जी बुला रहे हैं ! वाह ! मेरे धन्य भाग्य ! जो मुझे याद किया। मैं पापी पीपा।' कहते हुए, पीपा जी शिष्यों के साथ चल पड़े तथा गुरु रामानंद जी के पास आ पहुंचे। डंडवत होकर चरणों पर माथा टेका। चरण पकड़ कर मिन्नत की, 'महाराज ! इस भवसागर से पार होने का साधन बताओ। ईश्वर पूजा की तरफ लगाओ। मैं तो दुर्गा की मूर्ति का पुजारी रहा हूं। लेकिन नारी रूप ने मुझे अज्ञानता के खाते में फैंक छोड़ा।'

'उठो ! राम नाम कहो ! उठो ! स्वामी रामानंद जी ने हुक्म कर दिया तथा बाजू से पकड़ कर पीपा जी को उठाया। पीपा राम नाम का सिमरन करने लग गया। स्वामी रामानंद जी ने उन्हें चरणों में लगा लिया।

पीपा जी भक्त बने

'देखो भक्त ! आज से राज अहंकार नहीं होना चाहिए, राज बेशक करते रहना लेकिन हरि भजन का सिमरन मत छोड़ना। साधू-संतों की सेवा भी श्रद्धा से करना, निर्धन निःसहाय को तंग मत करना। ऐसा ही प्यार जताना जब प्रजा सुखी होगी, हम तुम्हारे पास आएंगे, आपको आने की आवश्यकता नहीं। राम नाम का आंचल मत छोड़ना। 'राम नाम' ही सर्वोपरि है।

पीपा जी उठ गए। उनकी सोई हुई आत्मा जाग पड़ी। रामानंद जी से दीक्षा लेकर उनके शिष्य बन गए। पूर्ण उपदेश लेकर अपने शहर गगनौर की तरफ मुड़ पड़े। तदुपरांत उनकी काया ही पलट

गई, स्वभाव बदल गया तथा कर्म बदला। हाथ में माला तथा खड़तालें पकड़ लीं, हरि भगवान का यश करने लगा।

पीपा जी अपने राज्य में आ पहुंचे। उन्होंने भक्ति करने के साथ साथ साधू-संतों की सेवा भी आरम्भ कर दी। गरीबों के लिए लंगर लगवा दिए तथा कीर्तन मण्डलियां कायम कर दीं। राज पाठ का कार्य मंत्रियों पर छोड़ दिया। सीता जी के अलावा बाकी रानियों को राजमहल में खर्च देकर भक्ति करने के लिए कहा। ऐसे उनके भक्ति करने में कोई फर्क न पड़ा।

पर वह गुरु-दर्शन करने के लिए व्याकुल होने लगे। उनकी व्याकुलता असीम हो गई तो एक दिन रामानंद जी ने काशी में बैठे ही उनके मन की बात जान ली। उन्होंने हुक्म दिया कि वह गगनौर का दौरा करेंगे। उनके हुक्म पर उसी समय अमल हो गया। वह काशी से चल पड़े तथा उनके साथ कई शिष्य चल पड़े। एक मण्डली सहित वे गगनौर पहुंच गए।

सूचना पहुंच गई गुरु रामानंद जी आ रहे हैं। राजा भक्त पीपा तथा उसकी पत्नी को चाव चढ़ गए। वह बहुत ही प्रसन्नचित होकर मंगलाचार तथा स्वागत करने लगे। उनके स्वागत का ढंग भी अनोखा हुआ। कीर्तन मण्डली तैयार की गई, भंडारे देने का प्रबन्ध किया गया। शहर को सजाया गया तथा लोगों को कहा गया कि वह गुरुदेव का स्वागत करें, दर्शन करें, क्योंकि गुरमुखों, महात्माओं के दर्शन करने से कल्याण होता है-ऐसे महात्मा के दर्शन दुर्लभ हैं। बड़े भाग्य हों तो दर्शन होते हैं। जैसे सतिगुरु जी फरमाते हैं-

वडै भागि भेटे गुरदेवा ॥ कोटि पराध मिटे हरि सेवा ॥१॥
चरन कमल जाका मनु रापै ॥ सोग अगनि तिसु जन न बिआपै ॥२॥
सागरु तरिआ साधू संगे ॥ निरभउ नामु जपहु हरि रंगे ॥३॥
पर धन दोख किछु पाप न फेड़े ॥ जम जंदारु न आवै नेड़े ॥४॥

त्रिसना अगनि प्रभि आपि बुझाई ।। नानक उधरे प्रभ सरनाई ।।५।।

(पन्ना ६८३-८४)

जिसका परमार्थ है-जिन सौभाग्यशाली पुरुषों ने रोशनी करने वाले गुरु की सेवा की है, उनके तमाम पाप कट गए। जिन गुरमुखों का मन प्रभु के चरण कंवलों के प्यार में रमां है, उन को शोक की अग्नि नहीं सताती, अर्थात संसार के भवसागर को साधू-संगत के साथ ही पार किया जा सकता है, इसीलिए कहते हैं कि वह परमात्मा जो निर्भय है, उसके नाम का सिमरन करो। प्रभु नाम सिमरन से जिन्होंने पराया धन चुराने का पाप एवं बुरे कर्म किए हैं, उनके निकट भी यम नहीं आता। क्योंकि प्रभु ने कृपा करके तृष्णा की अग्नि शीतल कर दी है। गुरु की शरण में आने के कारण उनका पार उतारा हो गया है। ऐसे हैं गुरु दर्शन जो बड़े भाग्य से प्राप्त होते हैं।

दो तीन कोस आगे से राजा अपने गुरुदेव को आ मिला। उसने प्रार्थना करके अपने गुरुदेव को पालकी में बिठाया तथा आदर सहित राज भवन में लेकर गया। चरणामृत पीया, सेवा करके पीपा आनंदित हुआ। कीर्तन होता रहा। कई दिन हरि यश हुआ तो स्वामी रामानंद जी ने विदा होने की इच्छा व्यक्त की तथा पीपा ने बड़ी नम्रता के साथ इस तरह प्रार्थना की-

हे प्रभु ! निवेदन है कि इस राज शासन में से मन उचाट हो गया है। यह राज पाठ अहंकार तथा भय का कारण है। इसको त्याग कर आपके साथ जाना चाहता हूं। आत्मा-परमात्मा के साथ कभी जुड़े। हुक्म करो।

'हे राजन ! यह देख लो, संन्यास लेना कष्टों में पड़ना है। बड़े भयानक कष्ट उठाने पड़ते हैं। भूखमरी से मुकाबला करना पड़ता है। जंगलों में नंगे पांव चलना पड़ता है। सुबह उठ कर शीतल जल

से स्नान करना होता है। ऐसा ही कर्म है, अहंकार का त्याग करना पड़ता है। प्रभु कई बार परीक्षा लेता है। परीक्षा भी अनोखे ढंग से होती है। यदि ऐसा मन करता है तो चल पड़ो साथ में।

पीपा गुरुदेव के चरणों पर माथा टेक कर राजभवन में गया, शाही वस्त्र उतार दिए तथा कफनी तैयार करवा कर गले में डाल ली, वैरागी साधू बन गया। उसने रानियों तथा उनकी संतान को राज भाग सौंप दिया। छोटी रानी सीता के हठ करने पर उसको वैरागन बना कर साथ ले चला। वैष्णव संन्यासियों में नारी से दूर रहने की आज्ञा होती है, पर स्वामी रामानंद जी सीता जी की पतिव्रता और प्रभु-प्यार देख कर उसको रोक न सके। सीता साथ ही चल पड़ी तथा वे अपने राज से बाहर हो गए। वे साधू-मण्डली के साथ घूमने लगे।

भगवान श्री कृष्ण जी के दर्शन

साधू मण्डली के साथ विचरण करते हुए भक्त जी ने द्वारिका नगरी में प्रवेश किया। वहां पहुंच कर स्वामी रामानंद जी तो अपने आश्रम कांशी की तरफ लौट आए, पर पीपा जी अपनी सहचरनी सीता के साथ वहीं रहे। भगवान श्री कृष्ण जी के दर्शन करने के लिए व्याकुल होकर इधर-उधर फिर कर कठिन तपस्या करने लगे। वह ध्यान धारण करके बैठ जाते। उनको जो कोई बात कहता, वह उसी को सत्य मान जाते। पर उनके साथ जब बेईमानी या धोखा होने लगता तो परमात्मा स्वयं ही उनकी रक्षा करता। भक्त जी तो दुनिया की बातों से दूर चले गए थे।

कथा करने वाले एक पंडित ने कहा, 'भगवान श्री कृष्ण जी द्वारिका नगरी में रहते हैं, वहां कोई महान भक्ति वाला ही पहुंच सकता है। उन्होंने दूसरी द्वारिका नगरी बसाई है। वह नगरी जल के नीचे है।

यह कथा श्रवण करने के बाद भक्त के मन पर प्रभाव पड़ गया।

वह तो भगवान के दर्शनों के लिए और ज्यादा व्याकुल हो गए। एक दिन यमुना किनारे बैठे थे। सीता जी उनके पास थी। उनके पास एक तिलकधारी पंडित बैठा था। उसको पूछा-

'हे प्रभु सेवक पंडित जी ! भला यह तो बताओ कि भगवान श्री कृष्ण जी जिस द्वारिका नगरी में रहते हैं, वह कहां है ?'

उस पंडित ने भक्त जी की तरफ देखा और समझा कि कोई बहुत ही अज्ञानी पुरुष है, जो ऐसी बातें करता है। उसने क्रोध से कह दिया-'पानी में।'

'पानी में' कहने की देर थी, बिना किसी सोच-विचार तथा डर के भक्त जी ने पानी में छलांग लगा दी। उनके पीछे ही उनकी पतिव्रता स्त्री ने छलांग लगा दी तथा दोनों पानी में लुप्त हो गए।

देखने वालों ने उस ब्राह्मण को बहुत बुरा-भला कहा तथा वह स्वयं भी पछताने लगा कि उससे घोर पाप हुआ है, पर वह क्या कर सकता है ? वह डर के कारण वहां से उठ कर चला गया।

उधर अपने भक्तों के स्वयं रक्षक ! भगवान विष्णु ने उसी समय कृष्ण रूप धारण करके अपने सेवकों को बचा लिया। जल में ही माया के बल से द्वारिका नगरी बसा ली तथा अपने भक्तों को दर्शन दिए। साक्षात् दर्शन करके पीपा जी तथा उनकी पत्नी आनंदित हो गए। जन्म मरण के बंधनों से मुक्त हुए। ऐसा आनंद द्वारिका नगर से प्राप्त हुआ कि वहां से लौटना कठिन हो गया। प्रार्थना की 'हे प्रभु ! कृपा करो अपने चरण कंवलों में निवास प्रदान करें।'

यह खेल समय के साथ होगा। अभी भक्तों को पृथ्वी लोक पर रहना होगा। भगवान कृष्ण जी ने वचन कर दिया।

प्रभु जी ने निशानी के तौर पर अपनी अंगूठी उनको दी। रुकमणी जी ने सीता को साड़ी देकर कृतार्थ किया। दोनों पति-पत्नी निशानियां लेने के बाद प्रभु के दरबार से विदा हो गए। देवता उनको जल से

बाहर तक छोड़ आए। पर प्रभु से विलग कर भक्त जी उसी तरह तड़पे जिस तरह जल के बिना मछली तड़पती है। उनको कपड़ों सहित पानी में से निकलते देख कर लोग बड़े स्तब्ध हुए।

कई लोगों ने पूछा-'भक्त जी आप तो डूब गए थे।'

भक्त जी ने कहा-'नहीं भाई हम डूबे नहीं थे, हम तो प्रभु के दर्शनों को गए थे, दर्शन कर आए हैं।'

जब लोगों को पूरी वार्ता का पता लगा तो पीपा जी की महिमा सारी द्वारिका नगरी में सुगन्धि की तरह फैल गई।

सीता सहचरी की रक्षा

लोग दूसरों की बातों में आने वाले तथा अन्धविश्वासी होते हैं। जब एक व्यक्ति ने बताया कि पीपा और उनकी पत्नी सीता प्रभु के दर्शन करके वापिस लौट आए हैं और प्रभु की निशानियां भी साथ लाए हैं तो शहर के सारे लोग पीपा जी के दर्शनों को आने लग गए। कुछेक तो प्रभु रूप समझ कर उनकी पूजा करने लग गए। पीपा जी को यह बात अच्छी न लगी। वह अपनी पत्नी सीता के साथ वन में चले गए ताकि एकांत में प्रभु भक्ति कर सकें। लोग तो हरि नाम सिमरन का भी समय नहीं देते थे। वह घने जंगल की तरफ जा रहे थे कि मार्ग में एक पठान मिला। वह बड़ा कपटी और बेईमान था और स्त्री के रूप का शिकारी था। वह दोनों भक्तों के पीछे लग गया। थोड़ी दूर जाने पश्चात सीता को प्यास लगी। वह एक कुदरती बहते जल के नाले से पानी पीने लग गई। भक्त जी प्रभु के नाम सिमरन में मग्न आगे निकल गए। उनकी और सीता की काफी दूरी हो गई। पठान ने पानी पी रही सीता को आ दबोचा। वह उसे उठा कर जंगल में एक तरफ ले गया। जो प्रभु के प्रेमी होते हैं, प्रभु भी उनका ही होता है। पठान के काबू में आई सीता ने परमात्मा का

सिमरन शुरू कर दिया। प्रभु सीता की रक्षा के लिए शेर के रूप में शीघ्र ही वहां आ गए और सती सीता की इज्जत बचा ली। पठान को कोई पाप कर्म न करने दिया और अपने पंजों से पठान का पेट चीर कर उसे नरक में भेज दिया। जब पठान मर गया तो शेर जिधर से आया था उधर को चला गया। सीता अभी वहां ही खड़ी थी कि प्रभु फिर एक वृद्ध संन्यासी के रूप में उसके पास आ गए। उन्होंने आते ही कहा-"बेटी सीता ! तुम्हारा पति पीपा भक्त खड़ा तेरा इंतजार कर रहा है। चलो, मैं तुम्हें उसके पास छोड़ आऊं।"

सीता उस संन्यासी के साथ चल पड़ी। वह भक्त पीपा जी के पास सीता को छोड़ कर आप अदृश्य हो गए। जिस समय संन्यासी आंखों से ओझल हो गया तो सीता को पता चला, 'ओहो ! यह तो प्रभु जी थे, दर्शन दे गए। मैं चरणों पर न गिरी।' वह उसी समय 'राम ! राम ! का सिमरन करने लग गई।

ठग साधू तथा सीता जी

सीता सहचरी एक तो प्राकृतिक तौर पर सुन्दर एवं नवयौवना थी, दूसरा, प्रभु भक्ति और पतिव्रता होने के कारण उसके रूप को और भी चार चांद लग गए थे। भक्तिहीन पुरुष जब उसको देख लेता था तो उसकी सुन्दरता पर मोहित हो जाता था। वह दिल हाथ से गंवा कर अपनी बुरी नीयत से उसके पीछे लग जाता था।

एक दिन चार दुष्ट पुरुषों ने सीता जी का सत भंग करने का इरादा किया। उन्होंने साधुओं जैसे वस्त्र खरीद लिए तथा नकली साधू बन गए। कई दिन भक्त पीपा जी के साथ घूमते रहे। एक दिन ऐसा सबब बना कि एक मंदिर में रात्रि रहने का समय मिल गया। उस मंदिर में दो कमरे थे।

मंदिर बिल्कुल खाली था। आसपास आबादी की जगह घना जंगल

था। जबसे भक्त पीपा जी और सती सीता ने संन्यास लिया था, वह एक बिस्तर पर नहीं सोते थे। उस दिन भक्त पीपा ने सती सीता को अकेली कमरे में सोने के लिए कहा तथा आप साधुओं के साथ दूसरे कमरे में सो गए। शायद ईश्वर ने ठगों का नकाब उठाना था, इसीलिए सीता सहचरी को अलग कमरे में विश्राम करने लिए कहा। चारों ठग साधुओं ने योजना बनाई कि अकेले-अकेले साथ के कमरे में आकर सती सीता जी का सत भंग करें। जब काफी रात हो गई तो जहां सती सीता जी सोई हुई थी, एक दुष्ट दबे पांव आगे गया। वह यही समझता रहा कि न तो पीपा जी को पता चला है, न सीता जी को। उनकी कामना पूरी होने में अब कोई कसर नहीं रहेगी। आखिर सीता है तो एक स्त्री थी, पुरुष के बल के आगे उसका क्या ज़ोर चलता है ? उस कमरे में अन्दर एक दुष्ट साधू घुस कर ढूंढने लगा कि सीता कहां है, क्योंकि काफी अंधेरा था। दबे पांव हाथों से तलाश करते हुए जब वह आसन पर पहुंचा, उसने शीघ्र ही सीता सहचरी को दबोचने का प्रयास किया। बाजू फैला कर वहीं गिर गया। जब हाथ इधर-उधर मारे तो उसकी चीखें निकल गईं। डर कर वह शीघ्र ही उछल कर पिछले पांव गिर गया। तलाशने पर पता चला कि कोमल तन वाली सुन्दर नारी बिस्तर पर नहीं है बल्कि तीक्ष्ण बालों वाली शेरनी है, उसके कान हैं, दांत हैं और वह झपटा मार कर पड़ी। गिरता-गिरता वह दुष्ट बाहर निकल आया। डर के कारण उसका दिल वश में न रहा। उसको हांफता हुआ देखकर दूसरे बाहर चले आए और उसे दूर ले जाकर पूछने लगे-मामला क्या है ? उसने कहा-'सीता का तो पता नहीं कहां है परन्तु उसकी जगह एक शेरनी लेटी हुई है। वह मुझे चीरने ही लगी थी, मालूम नहीं किस समय की अच्छाई की हुई मेरे आगे आई है, जो प्राण बच गए।

अरे पागल ! सीता ही होगी, यूं ही डर गए। डर ने तुम्हें यह

महसूस करवाया है कि वह शेरनी है। चलो ज़रा चल कर देखें, मैं त्रिण जलाता हूं। धूनी से अग्नि लेकर उन्होंने कुछ त्रिण जलाई। उन्होंने जलती हुई त्रिण के साथ कमरे में उजाला करके देखा तो सचमुच शेरनी सोई हुई है। उसकी सूरत भी डरावनी थी। डर कर चारों पीछे हट गए। अग्नि वाली त्रिण हाथ से गिर गई। उनमें से एक ने जाकर भक्त पीपा जी को जगा दिया। उसकी समाधि खुलने पर उसको बताया, 'भक्त जी अनर्थ हो गया। सीता तो पास वाले कमरे में नहीं है, उसके आसन पर शेरनी है। या तो आपकी पत्नी सीता कहीं चली गई है या शेरनी ने उसे खा लिया है। कोई पता नहीं चलता कि ईश्वर ने क्या माया रची है ?

पापी पुरुषों से यह वार्ता सुन कर पीपा जी हंस पड़े। वह मुस्कराते हुए बोले, 'सीता तो संभवतः कमरे में ही होगी लेकिन आपका मन और आंखें अन्धी हो चुकी हैं। इसलिए आपके दिलों पर पापों का प्रभाव है। आपको कुछ और ही दिखाई दे रहा है। चलो, मैं आपके साथ चलकर देखता हूं।

भक्त पीपा जी अपने आसन से उठ गए तथा उठकर उन्होंने साथ वाले कमरे में सीता जी को आवाज़ दी, 'सहचरी जी !'

'जी भक्त जी !' आगे से उत्तर आया।

'बाहर आओ ! साधू जन आपके दर्शन करना चाहते हैं।'

सीता सहचरी अपने बिस्तर से उठकर बाहर आ गई। चारों ठग साधू बड़े शर्मिन्दा हुए। उनको कोई बात न सूझी। वह चुप ही रहे। सूर्य निकलने से पूर्व ही वे सारे दुष्ट (ठग साधू) पीपा जी का साथ छोड़ कर कहीं चले गए। प्रभु ने सीता की रक्षा की। सबका रक्षक आप सृजनहार है।

जब सुबह हुई तो वे दुष्ट नज़र न आए। भक्त जी ने सीता को कहा–'मैं विनती करता हूं कि अब भी आप राजमहल में लौट जाओ।

देखो कितने खतरों का सामना करना पड़ता है। कई पापी मन आपके यौवन पर गिर पड़ते हैं। कलयुग का समय ही ऐसा है। आपके रूप पर मस्त होते हैं, यह लोग पाखण्डी हैं और मन पर काबू नहीं। आप अपने राजमहल में चले जाओ और सुख शांति से रहो।'

ऐसे वचन सुनकर पतिव्रता सीता जी ने हाथ जोड़ कर कहा–हे प्रभु ! ज़रा यह ख्याल कीजिए कि यदि आपके होते हुए आपके चरणों में मेरी रक्षा नहीं हो सकती तो राजभवन में रानियों को सदा खतरा ही रहता है। नारी को पति परमेश्वर के चरणों में सदैव सुख है, चाहे कोई दुःखी हो या सुखी, मैं कहीं नहीं जाऊंगी। जो बुरी नीयत से देखते हैं, वे पापों के भागी बनते हैं। मेरा रक्षक परमात्मा है।'

'अच्छा ! जैसी आपकी इच्छा।' यह कह कर पीपा जी प्रभु के साथ मन लगा कर बैठ गए।

वे दुष्ट चुपचाप ही भाग गए थे। उनको पता चल गया था कि सीता सहचरी का रक्षक ईश्वर आप ही है।

सूरज मल सैन को उपदेश

कायउ देवा काइअउ देवल काइअउ जंग़म जाती ॥
काइअउ धूप दीप नई बेदा काइअउ पूजऊ पाती ॥१॥
काइआ बहु खंड खोजते नव निधि पाई ॥
ना कछु आइबो ना कछु जाइबो राम की दुहाई ॥१॥ रहाउ ॥
जो ब्रहमंडे सोई पिंडे जो खोजै सो पावै ॥
पीपा प्रणवै परम ततु है सतिगुरु होई लखावै ॥२॥

(धनासरी पीपा जी, पन्ना ६९५)

भक्त पीपा जी जब उपदेश किया करते थे तो वह बाणी भी उच्चारण करते थे। आप जी की बाणी राजस्थान के लोक–साहित्य में मिलती है। मगर श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में एक शब्द है। इसका भावार्थ

यह है :

हे भक्त जनो ! यह जो पंचतत्व शरीर है, यही प्रभु है, भाव शरीर में जो आत्मा है वही परमात्मा है। साधू-सन्तों का घर भी शरीर है। पंडित देवतों की पूजा करते हैं, पूजा की सामग्री सब शरीर में है। सब कुछ तन में है। इसमें से ढूंढो। सतिगुरु की कृपा हो। इस तन से सब कुछ प्राप्त होता है।

ऐसे उपदेश करते हुए भक्त पीपा जी देश में भ्रमण करते रहे। जहां भी किसी को पता लगता कि पीपा राज छोड़कर भक्त बन गया है तो बहुत सारे लोग दर्शन करने के लिए आते। बड़े-बड़े राजा तथा सरदार अमीर लोग उपदेश सुनते। आप एक निरंकार का उपदेश देते तथा मूर्ति पूजा का खंडन करते।

आप महा त्यागी थे। एक बार आप एक रियासत की राजधानी में पहुंचे। ठाकुर द्वार पर निवास था। आप स्नान करने के लिए सरोवर के पास पहुंचे तो एक बेरी के नीचे गागर पड़ी हुई थी। उसमें से आवाज़ आई, 'मेरे कोई बंधन काटे, गागर में से आज़ाद करे।'

'उफ ! माया !' भक्त जी ने देख कर कहा-'भक्तों की शत्रु।' कह कर चले आए तथा सारी वार्ता सीता जी को सुनाई, 'स्वर्ण मुद्राएं पड़ी हैं।' हे स्वामी जी ! अच्छा किया आपने। उधर मत जाना, स्वर्ण मुद्राएं हमारे किस काम की !'

उनकी बातचीत पास बैठे चोरों ने सुन लीं। उन्होंने योजना बनाई कि चलो, हम गागर उठा लाते हैं। वह चले गए, पर जब गागर को हाथ डाला तो वहां सांप फुंकारे मारता हुआ दिखाई दिया। वे डर कर एक तरफ हो गए।

यह देख कर उनको काफी गुस्सा आया। एक ने कहा-'साधू को अवश्य ही हमारा पता लग गया होगा कि हम चोर हैं। उसके साथ एक सुन्दर नारी भी है। वह हमें धोखे से मरवाना चाहता है। चलो,

यह गागर उठाकर ले चलें तथा उसके पास रख दें। सांप निकलेगा तथा डंक मार कर इहलीला समाप्त कर देगा। नारी हम उठा कर ले जाएंगे। एक चोर की इस बात पर सभी ने हामी भरी।

चोरों ने गागर का मुंह बांध कर उसे उठा कर ठाकुर द्वार में आहिस्ता से भक्त पीपा जी के पास रख दिया और वहां से चले गए। भक्त उठा तो गागर को देखकर बड़ा आश्चर्यचकित हुआ लेकिन उसमें से उसी तरह आवाज़ आई, 'क्या कोई मेरे बंधन काटेगा ? मैं संतों की शत्रु नहीं, दासी हूं।'

भक्त जी ने गागर में से माया निकाल कर साधुओं को दो भंडारे कर दिए। खाली गागर ठाकुर द्वार में रख दी। उन भंडारों से जय-जयकार होने लग गई, लोग भक्त पीपा जी का यश करने लगे।

उस नगरी के राजा सूरज मल सैन को उपदेश देकर भक्ति मार्ग की ओर लगाया। आप १३६ वर्ष की आयु भोग कर इस संसार से कूच कर गए। पिछली आयु में आप पूर्ण ब्रह्म ज्ञानी हो गए थे। संसार में आपका नाम भक्ति के कारण अमर है।

बोलो ! भक्तों की जय, सतिनाम श्री वाहिगुरु तथा राम नाम का महान प्रताप।

श्री सैन जी

हे जिज्ञासु जनों ! भक्तों की महिमा अनंत है। हज़ारों हैं, जिन्होंने प्रभु परमात्मा का नाम जप कर भक्ति करके संसार में यश कमाया। ऐसे भक्तों में एक 'सैन' भक्त भी हुआ है। वह जाति से नाई था तथा उसकी बाणी का शब्द भी है।

धूप दीप घ्रित साजि आरती ।। वारने जाउ कमला पती ।।१।।
मंगला हरि मंगला ।। नित मंगलु राजा राम राइ को ।।१।। रहाउ ।।
ऊतमु दीअरा निरमल बाती ।। तुंही निरंजनु कमला पाती ।।२।।

रामा भगति रामानंदु जानै ।। पूरन परमानंदु बखानै ।।३।।
मदन मूरति भै तारि गोबिंदे ।। सैनु भणै भजु परमानंदे ।।४।।२।।

(पत्रा ६९५)

जिसका परमार्थ-भक्त जी कहते हैं, हम कमलपती (विष्णु भगवान) पर बलिहारी जाते हैं। मंगला चरण उपमा है, सदा उस राम राय ईश्वर की जिसकी सारी सृजना है। अच्छे दीये पर निरबल रोशनी है। हे ईश्वर ! सब कुछ तू ही है। भाव सूर्य के दीये वाला मालिक है। राम की भक्ति को रामानंद जानता है। क्योंकि वह पूर्ण परमानंद का भेद बताता है। भगवान की मूर्ति की तरफ देखकर तथा भक्ति करके परम आत्मा परमात्मा का भजन करो, ताकि सुख का साधन मिले। ईश्वर भक्ति यही है। (यह शब्द) आरती के समय पढ़ा जाता है। परमात्मा की उस्तति है। इस भक्त के बारे भाई गुरदास जी ने यूं लिखा है :

सुन प्रताप कबीर दा दूजा सिख होआ सैन नाई ।
प्रेम भगति रातीं करे भलके राज दुवारै जाई ।
आए संत पराहुने कीरतन होआ रैनि सबाई ।
छड न सकै संत जन राज दुआरि न सेव कमाई ।
सैन रूप हरि होई कै आया राने नों रीझाई ।
रानै दूरहुं सद के गलहुं कवाई खोल पैन्हाई ।
वस कीता हऊ तुध अज बोलै राजा सुनै लुकाई ।
प्रगट करै भगतां वडिआई ।

उस समय भक्ति की लहर का बोलबाला था। काशी तथा अन्य शहरों में भक्त मंडलियां बन चुकी थीं। भक्त जन परस्पर मिलकर सत्संग किया करते थे। भक्त कबीर का नाम सुनकर दूसरा सिक्ख सैन नाई हुआ। वह एक राजा के पास नौकर था। वह सुबह जाकर मुट्ठी चापी तथा मालिश किया करता था। सुबह उठकर राजा के पास

पहुंच कर पूरी सेवा करनी पड़ती थी ।

एक दिन संत आ गए। रैण-सबाई (सारी रात का कीर्तन) होना था। सैन जी भजन में ऐसे मन लगा कर बैठे कि राजा के पास जाने का ख्याल ही न रहा। प्रभु परमात्मा के चरणों में ध्यान जुड़ा रहा। संत सारी रात कीर्तन करते रहे ।

उधर राजा ने सुबह उठना था और उसकी सेवा होनी थी। अपने भक्त की लाज कायम रखने के लिए भक्तों के रक्षक प्रेम में आकर्षित ईश्वर को सैन जी का रूप धारण करके राजा के पास आना पड़ा। भगवान ने राजा की सेवा इतनी प्रेम से की कि राजा प्रसन्न हो गया तथा गले में से हार उतार कर सैन जी के भ्रम में भगवान को दे दिया। भगवान जी मुस्कराए तथा हार ले लिया और अपनी माया शक्ति से वह सैन जी के गले में डाल दिया लेकिन उनको पता न लगा। ऐसी लीला की भक्तों के प्रेम में ऐसा प्रभु बंध जाता है कि वश में होकर कहीं नहीं जाता ।

सुबह हुई। दिन निकल आया। होश आई तो ख्याल आया कि राजा के महल में नहीं गए। राजा नाराज हो जाएगा। यह सोचकर सैन जी चल पड़े। आगे राजा बाधवगढ़ (रीवा) अपने महल में टहल रहा था। उसने स्नान करके नए वस्त्र पहन लिए थे। सैन डर कर कुछ उदास-सा पहुंचा तो राजा ने पूछा, "सैन ! अब फिर क्यों आए ? क्या अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता है ? आज की तेरी सेवा तो बहुत ही सराहनीय थी ।

सैन ने ख्याल किया कि राजा गुस्से से ऊपर से हंस रहा है। असल में नाराज है। उसने कांपते हुए विनती की, 'महाराज ! क्षमा कीजिए, मैं आ नहीं सका। भक्त जन आ गए थे और रात भर कीर्तन होता रहा। मन कीर्तन सुनने में ही लगा रहा। मैं क्षमा चाहता हूं, गरीब सेवादार हूं।

यह बात सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा–'आज तुझे क्या हो गया है ? ये कैसी बातें कर रहे हो, मेरे पास तुम समय पर आए, सोए को उठाया, नाखुन काटे, मालिश की, स्नान करवाया, कपड़े पहनाए तथा प्रसन्न होकर मैंने अपना हार उतार कर तुझे दिया, वह हार आज तुम्हारे गले में पड़ा हुआ है।

भक्त सैन ने गले को हाथ लगाया तो सचमुच ही गले में सोने के मनकों वाली माला पड़ी हुई थी तथा उसे पता न चला। उस समय उसको ज्ञान हुआ तथा प्रभु उस्तति करके राजा को कहने लगा–'यह सत्य है राजन ! मैं नहीं आया। मैं जिसकी भक्ति कर रहा था, उसने स्वयं आकर मेरा कार्य किया। यह माला आपने भगवान के गले में डाल दी और भगवान अपनी शक्ति से मेरे गले में डाल गए। यह तो प्रभु के कौतुक हैं।'

यह सुनकर राजा और भी आश्चर्य चकित हुआ। उसे भी ज्ञान हो गया तथा उसने श्री सैन जी के चरणों में नतमस्तक होकर कहा–'भक्त जी ! अब आपको राज की तरफ से खर्च मिला करेगा, आप अब बैठ कर भक्ति किया करें।

ऐसा हुआ भक्त सैन नाई। कबीर जी तथा रविदास जी की तरह आप की महिमा बेअंत है। जो नाम जपता है, वह पार हो जाता है। जैसे सतिगुरु साहिब फरमाते हैं, नाम जपने वालों की महिमा बेअंत हुआ करती है।

सलोक महला ३

हऊमै जलते जलि मुए भ्रमि आए दूजै भाइ ॥
पूरै सतिगुरि राखि लीए आपनै पंनै पाई ॥
इहु जगु जलता नदरी आइआ गुर कै सबदि सुभाइ ॥
सबदि रते से सीतल भए नानक सचु कमाई ॥१॥ मः ३॥
सफलिओ सतिगुर सेविआ धंनु जनमु परवाणु ॥

जिना सतिगुर जीवदिआ मुइआ न विसरै सेई पुरख सुजाण ।।
कुलु उधारे आपणा सो जनु होवै परवाणु ।।
गुरमुखि मुए जीवदे परवाणु हहि मनमुख जनमि मराहि ।।
नानक मुए न आखीअहि जि गुर कै सबदि समाहि ।।२।।

(पन्ना ६४३)

गुरु रामानंद जी

पवित्र गंगा के किनारे काशी नगरी स्थित है, जिसे बनारस भी कहा जाता है। इस नगरी में 15वीं सदी में कभी घर-घर लोग रामानंद जी को याद करते थे। आप एक महापुरुष हुए हैं। वैष्णव मत के नेता और योगी थे।

उस साल के लिखित ग्रंथों और हिन्दी महान कोष के अनुसार आपका जन्म प्रयाग (इलाहाबाद) में एक ब्राह्मण भूरीरी करमां के घर सम्वत १४२३ विक्रमी को माता सुशीला जी के गर्भ से हुआ। उस समय भारत में तुर्क अथवा अरब देशों के मुसलमान आकर दबदबा कायम कर चुके थे और इस्लाम धर्म के प्रचार के साथ-साथ भारत गुलाम हो चुका था। लोगों की जीवन मर्यादा एक खिचड़ी हुई पड़ी थी।

स्वामी रामानंद जी का पूर्व नाम रामदत्त था। पांच वर्ष तक घर में ही रहे और जनेऊ की रस्म पूरी होने के पश्चात उनको काशी ले जाया गया ताकि विद्या दिलाई जाए। उस समय काशी ही विद्या का घर था। रामदत्त अपने गुरु से अक्षर और व्याकरण पढ़ते थे कि एक दिन बाहर गए। एक बाग में घूमते हुए उनका मेल राघवानंद जी के साथ हो गया। राघवानंद जी एक बड़े योगी तथा ज्योतिष विद्या के गुरु थे। उन्होंने जैसे ही रामदत्त को पास बुलाया और देखकर बोले, 'भगवान की लीला अद्भुत है। यह बालक कितना सुन्दर एवं

होनहार है, मगर कुछ दिनों के पश्चात ही इसकी मृत्यु हो जाएगी और माता-पिता के लिए यह दुःख का कारण बनेगा। बालक आयु बहुत अल्प लेकर आया है।'

यह वचन करके राघवानंद जी आगे चले गए। रामानंद अपने गुरु के पास आया, जिससे विद्या ग्रहण करता था। उसने रोते हुए कहा- 'हे गुरुदेव ! मार्ग में मुझे स्वामी राघवानंद जी मिले थे। उन्होंने वचन किया है कि मेरी आयु बहुत अल्प है। थोड़े दिन में ही मेरी मृत्यु होने वाली है। इसलिए गुरुदेव मैं विद्या प्राप्त नहीं करना चाहता। क्या लाभ पढ़ने का ?

रामदत्त के गुरु ने जब यह बात सुनी तो राघवानंद का नाम सुनकर वह भी घबरा गया। उसने ऊपर से रामदत्त को दिलासा देते हुए कहा- 'कोई बात नहीं, उनका भाव होगा बचपन गया और जवानी आई। आओ चलकर पूछते हैं। चिन्ता मत करो, ईश्वर भला ही करेगा। वह रामदत्त को साथ लेकर राघवानंद के पास पहुंचे। राघवानंद ने जो कुछ बाग में कहा था वहीं रामदत्त के विद्या गुरु से कह दिया। राघवानंद का यह वचन सुनकर रामदत्त के विद्या गुरु ने विनती की- 'महाराज ! कौन-सा यत्न किया जाए, जिससे इस बालक की आयु लम्बी हो जाए, कृपा करके कोई उपाय बताएं।'

'इस बालक की आयु लम्बी हो सकती है, यदि योगाभ्यास हो।' राघवानंद ने उत्तर दिया।

'फिर आप इस बालक को अपना शिष्य बनाएं और इसकी आयु लम्बी करें। होनहार बालक है।' रामदत्त के विद्या गुरु ने विनती की।

स्वामी राघवानंद ने रामदत्त को अपना शिष्य बना लिया और नाम रखा 'रामानंद'। स्वामी जी ने उसको योगाभ्यास करवाना शुरू कर दिया। योगाभ्यास करते-करते और श्वास दसवें द्वार चढ़ाते तथा उतारते रामानंद जी की आयु बढ़ गई और वह योगी हो गए। राघवानंद जी

के पश्चात 'रूमान जी' वैष्णव सम्प्रदाय के अध्यक्ष बन गए। आपका ऐसा तेज प्रताप बढ़ा कि प्रसिद्ध गुरु, जपी तपी, करामाती प्रगट हुए। भक्त रविदास जी आदि आपके ही शिष्य बने।

स्वामी रामानंद जी ने देश के समस्त तीर्थों की यात्रा करके भक्ति मार्ग का उत्तम उपदेश दिया। आप एक महापुरुष और ब्रह्मज्ञानी विख्यात हुए। आपका एक शब्द इस तरह है :

कत जाइऐ रे घर लागो रंगु ।। मेरा चितु न चलै मनु भइओ पंगु ।।१।। रहाउ ।। एक दिवस मन भई उमंग ।। घसि चंदन चोआ बहु सुगंध ।। पूजन चाली ब्रहम ठाई ।। सो ब्रहमु बताइओ गुर मन ही माहि ।।१।। जहा जाइऐ तह जल पखान ।। तू पूरि रहिओ है सभ समान ।। बेद पुरान सभ देखे जोई ।। ऊहां तउ जाइऐ जउ इहां न होई ।।२।। सतिगुर मै बलिहारी तोर ।। जिनि सकल बिकल भ्रम काटे मोर ।। रामानंद सुआमी रमत ब्रहम ।। गुर का सबदु काटै कोटि करम ।।३।।१।।

(पन्ना ११९५)

भाव–अब कहां जाना है ? घर में रंग लग गया है। मेरा मन अब भटकता नहीं। पिंगला हो गया है, भाव टिक गया है। एक दिन मन में यह उमंग पैदा हुई कि किसी मंदिर में ठाकुर की पूजा करें। चंदन तथा इत्र आदि तैयार करें। पूजा करने चले तो वह ब्रह्म गुरु ने मन में ही बता दिया। अब जिस तीर्थ पर जाते हैं वहां जल तथा ठाकुर द्वार ही मिलते हैं। हे ईश्वर ! तुम तो सर्वव्यापक हो। वेदों तथा पुराणों का अध्ययन किया है। उनसे पता चलता है कि ठाकुर (ईश्वर) प्रत्येक स्थान पर है। बाहर तब जाएं यदि वह अंदर न हो। हे सतिगुरु ! हम आप पर कुर्बान हैं, जिन्होंने सारे फिक्र तथा भ्रम काट दिए हैं। रामानंद अब ब्रह्म को याद करता है। गुरु के शब्द ने मेरे कर्म नाश कर दिए हैं।

भक्त धन्ना जी

सतिगुरु नानक देव जी के अवतार से पूर्व कोई ५३ वर्ष पहले मुम्बई के पास धुआन गांव में भक्त धन्ना का जन्म एक जाट घराने में हुआ था। आपके माता-पिता कृषि तथा पशु पालन कर के निर्वाह करते थे। वह बहुत निर्धन थे। जब धन्ना थोड़ा-सा बड़ा हुआ तो उन्होंने इसे पशु चराने के लिए लगा दिया। वह प्रतिदिन पशु चराने जाया करता था। परिश्रम करना निर्धन के लिए सब कुछ था।

गांव के बाहर एक कच्चे तालाब के किनारे एक ठाकुर द्वार था। उसमें बहुत सारी ठाकुरों की मूर्तियां रखी हुई थीं। उन मूर्तियों की पूजा की जाती थी। लोग सुबह जाकर माथा टेकते तथा भेंटें अर्पण कर आते थे। असल में गांव के ब्राह्मण के लिए उसके भोजन का प्रबंध था। वह भोजन किया करता था।

उस पंडित को ठाकुरों की पूजा करते, स्नान करवाते तथा घंटियां खड़काते हुए प्रतिदिन धन्ना भक्त देखता। वह बालक मन ही मन में सोचता कि यह क्या कौतुक है। इसकी बुद्धि कम होने के कारण उसको ज्ञान अधिक नहीं था। एक दिन उसके मन में आया कि देखता हूं कि क्या है ? वह खड़ा देखता रहा। इस तरह देखते हुए उसे कई दिन बीत गए। एक दिन उसने पंडित से पूछा कि यह क्या मामला है ? तो जो पंडित ने बताया, जैसे उसे भाई गुरदास जी ने यूं बताया :

बाहमण पूजे देवते धंना गऊ चरावन आवै। धंनै डिठा चलित
ऐह पुछै बाहमण आख सुनावै। ठाकुर दी सेव करै जो इछे
सोई फलु पावै। धंना करदा जोदड़ी मै भी देह इक जो तुधु
भावै। पथर इक लपेट करि दे धंनै नो गैल छुडावै। ठाकुर
नो नावालकै छाहि रोटी लै भोग चढ़ावै। हथ जोड़ मिंनत करै
पैरीं पै पै बहुत मनावै। हऊं भी मुंह न जुठालसां तूं रुठा मै

किहु न सुखावै । गोसाईं परतख होई रोटी खाहि छाहि मुहि लावै । भोला भाऊ गोबिंद मिलावै ।१३।

(भाई गुरदास जी)

भाव–ब्राह्मण ठाकुरों की पूजा करता था तथा वहां धन्ना गाएं चराया करता था। धन्ने ने ब्राह्मण की यह खेल देखी एवं ब्राह्मण से पूछा–पंडित जी ! यह क्या मामला है, आप इन मूर्तियों के आगे बैठकर क्या करते रहते हो ? ब्राह्मण ने उत्तर दिया–बन्धू ! ठाकुरों की सेवा है, जो सेवा करे, उसकी मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं। धन्ने ने कहा–'यह ठाकुर मुझे भी दे दीजिए। धन्ने से छुटकारा पाने के लिए कपड़े में लपेट कर एक पत्थर दे दिया। घर जाकर धन्ने ने उस पत्थर को ठाकुर समझकर उसे स्नान करवाया तथा लस्सी–रोटी आगे रखकर भोग लगाने के लिए कहने लगा। ठाकुर प्रसाद न ले तो धन्ना हाथ जोड़ कर मनाने लगा, साथ में मिन्नतें कीं। धन्ने ने भी सौगंध खा ली कि ठाकुर जी यदि आप नहीं खाएंगे तो मैं भी भूखा ही रहूंगा। उसका यह प्रण देखकर प्रभु प्रगट हुए तथा उसकी लस्सी पी और रोटी खाकर धन्ने भक्त को दर्शन दिए। भोलेपन में पूजा करने तथा साफ मन उसने श्रद्धा से पत्थर में से ईश्वर को पा लिया।

धन्ने भक्त की पूर्ण कथा इस प्रकार है–जब धन्ना भक्त को प्रभु की लगन लगी, उस समय उसके माता–पिता वृद्ध हो चुके थे तथा वह अकेला नवयुवक था। उसने ख्याल किया कि यदि ठाकुर की पूजा करने से सत्य ही ठाकुर प्रसन्न हो जाएं तो घर की सारी आवश्यकताएं पूरी कर लूं। घर से गरीबी चली जाए। सुख की सांस आए तथा आवश्यक वस्तुएं भी मिल जाएं। ऐसा करने पर वह प्रसन्न हो जाएगा तथा जीवन के चार दिन सुख से बीत जाएंगे। माता–पिता ने गरीबी काटी, अब वह भी गरीब रहे, ऐसा करना तो उचित नहीं। मन में ऐसे विचार करके उसने झिझक–झिझक कर आखिर यह

फैसला कर ही लिया कि अवश्य पंडित से मिलकर विनती करूंगा। लोग भी कहते हैं, प्रभु सब देता है। यदि ठीक है तो दे। ऐसा करना होगा।

आखिर एक दिन सुबह शीघ्र ही उठकर घर से धन्ना ठाकुर द्वारे चला गया। आगे पंडित पूजा कर रहा था। जब पूजा करके हटा तो धन्ने ने हाथ जोड़ कर कहा-'पंडित जी ! मुझे पहले यह तो बताएं कि जिनकी पूजा की जाती है, यह क्या देते हैं ? इनके पास कौन-सी शक्ति है ?'

धन्ने ! इनकी पूजा करने से सब कुछ प्राप्त होता है। ये हमारे देवता हैं। भगवान हैं, जो मांगो वही देते हैं। जब यह प्रसन्न हो जाएं तो पौं बारह।

'कृपा करें तो एक ठाकुर मुझे भी दे दें, मैं भी पूजा किया करूं। जब ठाकुर प्रसन्न हो जाएंगे तो कुछ मांग लूंगा। मैं बड़ा निर्धन हूं।'

'तुम्हारे पास ठाकुरों ने प्रसन्न नहीं होना।'

'क्यों पंडित जी ?' धन्ने ने हैरान होकर पूछा।

'तुम्हें बोल तो दिया। एक तो तुम जाट हो। जाट इतना बुद्धिमान नहीं होता कि पूजा कर सके। न ही जाट को ठाकुर रखने का अधिकार है। दूसरा तुम अनपढ़ हो। विद्याहीन पुरुष पशु का जन्म होता है। तीसरा मंदिर के बिना ठाकुर न कहीं रहते हैं और न ही प्रसन्न होते हैं। इसलिए तुम जिद्द मत करो और अपने खेतों की देखभाल करो। ब्राह्मण का धर्म है पूजा-पाठ करना। जाट का कार्य है अनाज पैदा करना। बंधू ! आप लोग हल चलाते तथा रम्बे से गोडी करते ही अच्छे लगते हो। ऐसे पूजा की तरफ ध्यान मत दो, पछताओगे।

ब्राह्मण ने इधर-उधर की कह कर बहुत समझाने का यत्न किया लेकिन धन्ना टस से मस न हुआ। वह अपनी जिद्द पर अडिग रहा। पंडित कमजोर-सा था लेकिन धन्ना भरी जवानी का नवयुवक। पंडित

को चिन्ता हुई कि कहीं पिटाई न कर दे। इसलिए पंडित ने डरते हुए धन्ने को कहा-'अच्छा धन्ना ! जिद्द करते हो तो मैं तुम्हें भी एक ठाकुर दे देता हूं।' यह कहकर ब्राह्मण ने धन्ने को टालने के लिए ठाकुर पत्थर सालगराम जो मंदिर में फालतू पड़ा था, उठाकर धन्ने के हवाले कर दिया। साथ ही उसे पाठ-पूजा करने की विधि बता दी कि विश्वास के साथ पूजा करना, मन लगाकर।' यह कहकर उसे भेज दिया।

धन्ना ठाकुर चादर में लपेट कर घर ले गया तथा ठाकुर को अन्दर रख दिया। उसी समय वह एक बढ़ई के पास गया तथा एक लकड़ी की चौकी बनवाई। उस चौकी को अच्छी तरह धो कर उस पर ठाकुर को टिका दिया।

रात धन्ने को नींद न आई। वह मन ही मन में योजनाएं सोचता रहा कि सुबह उठकर वह कैसे ठाकुरों को प्रसन्न करेगा। यदि ठाकुर प्रसन्न हो भी जाएंगे तो क्या मांगूंगा ? घर में किस-किस वस्तु की आवश्यकता है। यदि आवश्यकताएं अधिक हैं तो पहले क्या चाहिए ? इस तरह की दलीलें तथा सोचों में ही रात बीत गई। मुर्गा ने सुबह बांग दी तो वह बिस्तर से उठ बैठा। पहले स्वयं स्नान किया तथा फिर ठाकुर को स्नान कराया। जब स्नान हो गया तो कितनी देर तक हाथ जोड़ कर ठाकुर जी के आगे बैठा रहा। विद्याहीन था, पूजा-पाठ का कोई ज्ञान नहीं था इसलिए वह चुप करके बैठा रहा, पर श्रद्धा से उसकी आत्मा कह रही थी, ठाकुर बहुत अच्छे हैं। सारे जगत के हर्ता कर्ता हैं। मुझे सुख दो। मैं आपको भोग लगाऊंगा।

धन्ना अकेला था। घर के काम उसको स्वयं करने पड़ते थे। ठाकुरों को स्नान करवा कर उनके आगे भक्ति भाव से बैठ कर दिन उदय होने पर उठा, लस्सी रिड़की, रोटियां पकाईं। जो मक्खन निकाला वह कटोरी में डाल कर रख लिया। थाली में रोटी परोस कर लस्सी

गड़वी में डाल कर धन्ने ने ठाकुर जी के आगे विनय किया, 'हे प्रभु जी ! भोग लगाओ ! मुझ गरीब के पास रोटी, लस्सी तथा मक्खन ही है और कुछ नहीं। मैं गरीब कंगाल हूं, जब और चीज़ें दोगे तो वह चीज़ें आपके आगे परोस कर रखा करूंगा। खाओ ! ठाकुर जी। ऐसा कह कर वह बैठा देखता रहा। अब पत्थर भोजन कैसे करें ? ब्राह्मण तो ठाकुर के भोग का बहाना लगा कर सारी सामग्री घर ले जाता था। एक निवाला पत्थर के मुंह को लगाना तथा थाल उठा कर घर को चले जाना। भोले-भाले धन्ने को इन चालाकियों का कुछ पता नहीं था, वह तो ब्राह्मण के वचनों को सत्य समझता था।

दो घण्टे बीत गए। ठाकुर जी ने धन्ने का प्रसाद न लिया। धन्ना बहुत हैरान हुआ। वह व्याकुल होकर कहने लगा, 'हे प्रभु ! क्या जाट का प्रसाद आप नहीं खाते ? यह शुद्ध है। मैंने स्नान करके पकाया है। यदि लस्सी तथा मक्खन अच्छा नहीं लगता तो बताओ और क्या लाऊं। दादा तो इतनी देर नहीं लगाते थे। वह प्रसाद तो तुरंत खा जाते थे, प्रभु कृपा करो। हां, यह भी पक्का समझो। यदि आज आप ने प्रसाद न खाया तो मैं भी नहीं खाऊंगा। मर जाऊंगा, पर आपको खिलाए बगैर नहीं खाऊंगा। मैं वचन देता हूं, मैं जाट हूं, हठ नहीं छोड़ूंगा। यदि आपका धर्म है सिर्फ ब्राह्मण के हाथ से खाना तो हमारा धर्म है हठ के बदले कुर्बान हो जाना। प्रसाद खाओ नहीं तो मैं धरना लगा कर बैठ जाता हूं। यह कह कर धन्ने ने पालथी मार ली तथा ठाकुर की तरफ देखता हुआ बैठ गया।

प्रभु ने विचार किया कि अब तो पत्थर में से प्रगट होना पड़ेगा। भक्त धन्ने की आत्मा निर्मल है। यह छल कपट नहीं जानता। इसका दृढ़ विश्वास बन गया है कि ठाकुर भोजन खाते हैं, अब किसी के समझाने पर नहीं समझेगा। यह मेरा सच्चा भक्त है। इसकी लस्सी पीनी पड़ेगी। यदि पत्थर के आगे जाट मर गया तो संसार मेरी भक्ति

छोड़ देगा। धन्ना देखता रहा, उसकी आंखें ठाकुर जी के आगे टिकी हुई थी। एक घण्टा और बीतने के पश्चात धन्ना क्या देखता है कि अचानक ही श्री कृष्ण रूप भगवान जी धन्ने की रोटी मक्खन के साथ खा रहे हैं तथा लस्सी भी पी रहे हैं। धन्ना खुशी से झूम उठा। मेरे प्रभु ! आ गए ! भोजन खाने लग गए। मेरे प्रभु ! धन्ने की सारी लस्सी पी ली। रोटी और मक्खन खा लिया। थोड़ा-सा शीत प्रसाद रहने दिया। भोजन खाकर प्रभु जी बोले। धन्ने जो इच्छा है मांग लो, मैं तुम पर प्रसन्न हूं, मांगो।'

धन्ने भक्त ने हाथ जोड़ कर (बाणी द्वारा) विनती की :

गोपाल तेरा आरता ।।
जो जन तुमरी भगति करंते तिन के काज सवारता ।।१।। रहाउ ।।
दालि सीधा मागउ घीउ ।। हमरा खुसी करै नित जीउ ।।
पन्हीआ छादनु नीका ।। अनाजु मगउ सत सी का ।।१।।
गऊ भैस मगउ लावेरी ।। इक ताजनि तुरी चंगेरी ।।
घर की गीहनि चंगी ।। जनु धंना लेवै मंगी ।।२।।

(पन्ना ६९५)

परमार्थ-हे प्रभु ! मैं तेरी प्रशंसा करता हूं, क्योंकि जो भी तेरी आरती उस्तति करते हैं, तू उनके कार्य संवार देता है। मुझे कुछ मांगने के लिए कहा है, मैं तो आवश्यक वस्तुएं ही मांगता हूं। गेहूं, दाल तथा घी दीजिए। मैं प्रसन्न हो जाऊंगा यदि जूता, कपड़े तथा अनाज सात प्रकार का, गाय या भैंस, सवारी करने के लिए घोड़ी तथा घर की देखभाल करने के लिए एक सुन्दर नारी मुझे दें। यह सभी वस्तुएं मिल जाएं तो मेरे कार्य संवरते हैं।

धन्ना जी के ये वचन सुनकर प्रभु हंस पड़े। हंसते हुए ही बोले-'ये सब वस्तुएं तुम्हें मिल जाएंगी।'

प्रभु बोले-'अन्य कुछ ?'

प्रभु ! और क्या बताऊं और क्या मांगूं ? हां, जब भी मैं आपको याद करूं, आप दर्शन दीजिए। यदि कोई ज़रूरत हुई तो बताऊंगा। हे प्रभु ! मुझे वचन दें कि मेरे याद करने पर आप अवश्य दर्शन दिया करेंगे।

'तथास्तु ! तेरी यह बात मानता हूं।' भगवान ने उत्तर दिया।

हे प्रभु ! यदि मेरी यह विनती स्वीकार है तो धन्ना आज से आपका आजीवन सेवक हुआ। मैं सारा जीवन भक्ति में ही व्यतीत करूंगा। आपके अलावा किसी अन्य का नाम नहीं लूंगा। धन्ना यूं कहता गया और खुशी से वह दीवाना हो गया था। उसकी आंखें बन्द हो गई थीं। जब उसने आंखें खोलीं तो प्रभु जी लुप्त हो चुके थे। वह पत्थर का सालगराम उसके सामने पड़ा था। वह प्रसन्नचित उठा। बर्तन उठाए तथा बर्तन में जो शीत प्रसाद बचा था, उसे खाकर कृतार्थ हो गया। उस प्रसाद को खाने से धन्ने को तीनों लोकों का ज्ञान हो गया। वह प्रभु का यशगान करने लगा। ऐसी नाम खुमारी चढ़ी कि उसके चेहरे की लाली और ही हो गई। दिखाई देता जगत अति सुन्दर दिखने लगा।

प्रभु के दर्शनों के कुछ दिन पश्चात धन्ने के घर तमाम खुशियां आ गईं। एक अच्छे धनवान के घर उसका विवाह हो गया। पत्नी आई तो दहेज में घोड़ी, गाय, लवेरी तथा सुन्दर वस्त्र आदि प्रचुर मिल गए। उसकी बिना बोई भूमि पर भी फसल लहलहा गई तथा अन्न भी बेशुमार हुआ। धन्ना भक्त अपने प्रभु का यश करने लगा। लोग धन्ने की प्रभु भक्ति की महिमा का वर्णन करने लगे। सारे लोग कहने लगे धन्ना भक्त हो गया है। उसके दर्शन करके लोग कृतार्थ होने लगे।

धन्ने को किसी ने कहा कि चाहे प्रभु तुम्हारी भक्ति पर प्रसन्न हैं, तुम्हारी बात मानते हैं लेकिन फिर भी तुम्हें गुरु धारण करना

चाहिए। जब उस पुरुष से धन्ने ने पूछा कि मुझे किसको अपना गुरु बनाना चाहिए तो उसने स्वामी रामानंद जी का नाम लिया। एक दिन अचानक ही प्राकृतिक तौर पर स्वामी रामानंद जी उधर आ निकले। भक्त धन्ने ने हार्दिक तौर पर साधू-संगत की भरपूर सेवा की। सेवा के पश्चात धन्ने ने दीक्षा के लिए उनसे विनती की। स्वामी रामानंद जी ने धन्ने की विनती को स्वीकार कर लिया तथा गुरु दीक्षा देकर धन्ने को रामानंद जी ने अपना शिष्य बना लिया। धन्ना कर्म करता हुआ राम नाम का सिमरन करने लगा। मौज में आकर कई बार धन्ना प्रेम पाती द्वारा अपने भगवान को अपने पास बुला लेता और उससे मनवांछित कार्य पूर्ण करवाता।

एक दिन एकाग्रचित्त होकर भगवान को उसने याद किया और मन में मौज आई कि प्रभु उसकी गऊओं का चरवाल बने। भक्तों के मन की परमात्मा भी जानता है। उस समय भक्त को कोई आवश्यक कार्य था और गऊएं चर रही थीं। अचानक एक बालक के रूप में भगवान जी ने दर्शन दिए और उसे कहा-'हे भक्त ! तेरी भक्ति का अब समय है। घर में साधू पधारे हैं, उनकी सेवा करो, तुम्हारी गऊएं मैं चराता हूं। भक्त धन्ने ने उस बालक को ध्यान से देखा। उसकी शक्ल सूरत अद्भुत थी। पहले तो भक्त झिझका कि कोई गऊएं धकेल कर न ले जाए। लेकिन बाद में उसने भरोसा करके सोचा कि क्या मालूम प्रभु की ही लीला है। यह सोच कर वह घर की ओर चला गया। उसके घर में सचमुच ही साधू आए हुए थे और उन साधुओं के साथ वही बालक बीच में बैठा हुआ था, जिसको भक्त धन्ना जूह में अभी छोड़ कर आया था। वह आश्चर्य चकित हुआ तथा चरणों में नतमस्तक हो गया।

भक्त ! गऊएं तो चरा रहे हैं। यह भी मन में इच्छा धारण की है कि भगवान कुएं पर तुम्हारी गाड़ी को धक्का दे। सो ऐसा ही

होगा.....। यह कह कर भगवान अदृश्य हो गए। धन्ना जी जब कुएं पर गए तो आगे उसके बैल जोत रहे थे तथा कुंआ बह रहा था। भगवान बालक रूप में गाड़ी हांक रहे थे। भक्त धन्ना यह देखकर अपने प्रभु की उस्तति करने लग गया।

भक्त नामदेव जी

नामा छींबा आखीऐ गुरमुखि भाई भगति लिवलाई ।
खत्री ब्राहमन देहुरै ऊतम जाति करन वडिआई ।
नामा पकड़ उठालिआ बहि पिछवाड़े हरि गुण गाई ।
भगत वछल आखाइंदा फेर देहुरा पैज रखाई ।
दरगह माण निमाणिआं साधसंगति सतिगुर सरणाई ।
ऊतम पदवी नीच जाति चारे वरन पए पग आई ।
जिऊं नीवाण नीर चल जाई ।४।

भाई गुरदास जी फरमाते हैं-एक नामदेव नाम का भक्त हुआ है। वह जाति का छींबा था और उसने प्रेम भक्ति से ध्यान जोड़ा हुआ था। एक दिन उच्च जाति के क्षत्रिय और ब्राह्मण एक मन्दिर में जाकर प्रभु का यशगान कर रहे थे कि नामदेव भी उनके बीच बैठकर प्रभु की आराधना करने लगा। जब उच्च जाति वालों ने देखा कि यह निम्न जाति का उनके पास बैठकर प्रभु की स्तुति कर रहा है तो उन्होंने उसे पकड़कर संगत से उठा दिया। वह देहुरे मन्दिर के पिछले भाग के पास जाकर प्रभु की स्तुति करने लग गया। भगवान ने भी एक ऐसी अद्भुत लीला रची कि देहुरा का मुंह घुमा दिया। वह उस तरफ हो गया तो उच्च जाति वाले बहुत हैरान हुए।' क्योंकि प्रभु के दर पर निमानों को मान मिलता है। निम्न जाति वालों को प्रभु उत्तम पदवी प्रदान करता है। उसी तरह प्रभु का प्रेम निम्नों की ओर जाता है। जैसे नीर नीचे वाले स्थान

पर बहता है, ऊंचाई की तरफ नहीं जाता ।

माता-पिता एवं बचपन

जिस नामदेव बाबत भाई गुरदास जी ने लिखा और यश किया है, इस भक्त नामदेव की बाणी भी श्री गुरु ग्रंथ साहिब में विद्यमान है। आपका जन्म गांव नरसी ब्राह्मणी, ज़िला सतार, मुम्बई में कार्तिक शुदि ११ सम्वत, १३२७ विक्रमी को हुआ। आपकी माता का नाम गोनाबाई और पिता का नाम सेठी था, जो छींबा जाति से थे। वे कपड़े धोते एवं छापते थे। सेठी बहुत ही नेक पुरुष था। वह सदा सत्य बोलता तथा कर्म करता रहता था। पिता नेक होने पर उसका पुत्र भी नेक निकला। वह भी साधू-संतों की संगत के पास बैठता। यहां पर सुमति एवं उपदेश भरे वचन सुना करता था।

उनके गांव में एक देवता का मन्दिर था, जिसे विरोभा देव का मन्दिर कहा जाता था। उस मन्दिर में देवते रखे हुए थे। वहां जाकर लोग बैठते तथा भजन करते थे। वह भजन गाने बैठते तो वह भी भजन गाने लग जाता। वह बच्चों को इकट्ठे करके यश करने लगता और भजन-कीर्तन करवाता। सभी उसको शुभ बालक कहते थे। वह वैरागी और साधू स्वभाव हो गया था। कोई काम-काज न करता। वह सदा बैठा रहता और कभी-कभी काम-काज करता हुआ भी राम यश गाने लग जाता।

'नामदेव ! एक दिन उसके पिता ने कहा-बेटा कोई कामकाज किया करो। काम के बिना हमारा निर्वाह नहीं हो सकता।' कर्म करके भोजन खाना है, घर का परिवार चलाना है। अब तुम्हारा विवाह भी हो चुका है।'

'विवाह तो आप ने कर दिया।' नामदेव बोला। लेकिन मेरा मन तो प्रभु की भक्ति में लगा हुआ है। क्या करूं ? जब मन नहीं लगता

तो ईश्वर आवाज़ें मारता रहता है। नामदेव ने उत्तर दिया।

'बेटा ! भक्ति भी करो, प्रभु की भक्ति करना गलत नहीं। लेकिन रोज़ी भी जीवन के निर्वाह के लिए कमानी है। वह भी कमाया करो। ईश्वर रोज़ी में बरकत डालेगा।'

नामदेव जी का विवाह छोटी उम्र में ही हुआ और उनकी पत्नी का नाम राजाबाई था। नामदेव का धर्म-कर्म, भक्ति करने को ही लोचता था। मन रोके नहीं रुकता था। पर उसकी पत्नी ने उसको पाठशाला से विलग करा दिया। उसको व्यापार कार्य में लगाया पर वह असफल रहा।

ठाकुरों को दूध पिलाना

एक दिन नामदेव के पिता ने उसको कहा, 'पुत्र ! मैं दो-तीन दिन के लिए बाहर जा रहा हूं। अपने मंदिर में जो ठाकुरों की सेवा मैं करता हूं वह तुम करना। स्नान करने के पश्चात ठाकुरों को स्नान कराना, मंदिर को स्वच्छ रखना तथा ठाकुरों को दूध चढ़ाना। जैसे सारी मर्यादा मैं पूर्ण करता हूं वैसे तुम करना। देखना लापरवाही या आलस्य मत करना। नहीं तो ठाकुर नाराज़ हो जाएंगे।'

'बहुत अच्छा पिता जी, जो आज्ञा, वैसे ही ठाकुरों की पूजा होगी। आप चिंता न कीजिए।' नामदेव जी ने उत्तर दिया और अपने पिता को घर से विदा किया।

अगले दिन नामदेव जी सुबह शीघ्र ही उठे, स्नान किया और धूप जलाई। तदुपरांत ठाकुरों के आगे दूध का कटोरा भर कर रखा। आप हाथ जोड़ कर बैठ गया और देखने लग गया कि ठाकुर जी कैसे दूध पीते हैं। वह काफी देर तक देखता रहा लेकिन ठाकुरों ने दूध न पिया।

ठाकुरों ने दूध कहां पीना था ? वह तो पत्थर की मूर्ति थे। उनके मुख पर चम्मच भर कर दूध लगाया जाता और शेष दूध पंडित पी

जाते थे। नामदेव जी को इस बेईमानी का पता नहीं था। वह तो समझते थे कि ठाकुर सारा दूध पी जाते हैं। तब उन्होंने ठाकुरों के आगे विनती करनी शुरू की–'हे प्रभु ! मैं तो आपका छोटा–सा सेवक हूं, दूध लेकर आया हूं। यह दूध शुद्ध है, कृपा करके इसे ग्रहण कीजिए।'

अंत में भक्त ने बहुत बैचेनी से इस प्रकार ठाकुरों से प्रार्थना की :

दूधु कटोरै गडवै पानी ।। कपल गाइ नामै दुहि आनी ।।१।।
दूधु पीउ गोबिंदे राइ ।। दूधु पीउ मेरो मनु पतीआइ ।।
नाही त घर को बापु रिसाइ ।।१।। रहाउ ।।
सुोइन कटोरी अंम्रित भरी ।। लै नामै हरि आगै धरी ।।२।।

(पन्ना ११६३)

'हे प्रभु ! दूध का कटोरा तथा जल का गड़वा आपके पास रखा हुआ है। यह दूध मैं कपला गाय से दोह कर लाया हूं। हे मेरे गोबिंद ! दूध पीजिए, यदि आप दूध पी लेंगे तो मेरा मन शांत हो जाएगा, नहीं तो घर पहुंचकर पिता जी नाराज़ होंगे। सोने की कटोरी मैंने आपके आगे रखी है। पीएं ! अवश्य पीएं ! मैंने कोई पाप नहीं किया। यदि मेरे पिता से प्रतिदिन दूध पीते हो तो मुझ से आप क्यों नहीं ले रहे ? हे प्रभु ! दया करें। कृपा करें। आगे ही पिता जी मुझे बुरा एवं निकम्मा समझते हैं। यदि आज आप ने दूध न पिया तो मेरी खैर नहीं। पिता जी घर से निकाल देंगे।' हे भगवान !

जो कार्य नामदेव जी के पिता सारी उम्र न कर सके। ठाकुर तथा अपने जीवन के साथ सदा बेईमानी की। न शुद्ध हृदय से प्रार्थना करते रहे और न ही ठाकुर जी ने दूध पिया। जैसे ब्राह्मण चम्मच से दूध ठाकुर जी के मुख को छुआ कर चम्मच पीछे कर लेते थे, तैसे ही नामदेव जी के पिता जी करते रहे, लेकिन मासूम आत्मा नामदेव जी को इसका पता नहीं था। वह ठाकुर जी के आगे बैठा मिन्नतें

करता रहा। अंत में प्रभु भक्त की भक्ति पर खिंचे हुए आ गए। पत्थर की मूर्ति द्वारा हंसे। उसे नामदेव जी ने अपनी बाणी द्वारा यूं बताया है–

ऐकु भगतु मेरे हिरदे बसै ॥ नामे देखि नराइनु हसै ॥३॥

(पत्रा ११६३)

एक (नामदेव) भक्त प्रभु के हृदय में बस गया, नामे (नामदेव) को देखकर प्रभु हंस पड़े। हंस कर उन्होंने दोनों हाथ आगे बढ़ाए और दूध पी लिया। दूध पी कर मूर्ति फिर ज्यों की त्यों हो गई।

दूधु पीआई भगतु घरि गइआ ॥
नामे हरि का दरसनु भइआ ॥४॥३॥

(पत्रा ११६३-६४)

दूध पिला कर नामदेव जी घर चले गए। इस तरह उनको प्रभु ने साक्षात्-दर्शन दिए। यह नामदेव की भक्ति मार्ग पर प्रथम जीत थी। उसकी विनती सुनी गई तथा आत्मा कहीं ओर हो गई। प्रभु से ध्येय मिल गया। इस साखी के संबंध में भाई गुरदास जी ने यह उच्चारा है :

कंम किते पिऊ चलिआ नामदेव नो आख सिधाया ।
ठाकुर दी सेवा करीं दूध पीआवन कहि समझाया ।
नामदेव इशनान करि कपल गाई दुहिके लै आया ।
ठाकुर नो नहावाल कै चरणोदक लै तिलक चढ़हाया ।
हथ जोड़ बिनती करै दुध पीअहु जी गोबिंद राया ।
निहचऊ करि आराधिआ होई दयाल दरस दिखलाया ।
भरी कटोरी नामदेव लै ठाकुर नों दुध पीआया ।
गाई मुई जीवालीअनु नामदेऊ दा छपर छाया ।
फेरि देहुरा रखिओनु चारि वरन लै पैरीं पाया ।
भगत जनां दा करे कराया ।११।

(वारां भाई गुरदास जी)

शुद्ध हृदय से की हुई उनकी वंदना ऐसी प्रवान हुई कि उनके पास शक्तियां आ गईं। वह भक्ति भाव वाले हो गए तथा जो वचन मुंह से कहते वहीं सत्य होते। आपके पिता आए। उन्होंने जब सुना कि नामदेव ने पत्थर के ठाकुरों में जान डाल दी, उनको दूध पिलाया तो वह बड़ा खुश हुआ। उसने समझा उसकी कुल सफल हो गई। उसने जाकर ठाकुरों के मंदिर में प्रार्थनाएं कीं। नामदेव जी का नगर में यश होने लगा। नामदेव ठाकुरों के पास बैठे उनका यश गायन करते रहते। घर के कामों को त्याग दिया।

पुंडरपुर में बीठुल के चरणों में

नगर नरसी ब्राह्मणी के निकट ही पुंडरपुर था। वहां मंदिर थे। उन मंदिरों में मेले लगते थे। प्रत्येक सप्तमी तथा बोधनी एकादशी को बड़ी भारी भीड़ होती थी। बहुत सारी भक्त मण्डलियां दूर-दूर से आकर भजन करतीं। नामदेव जी 'बारकरी भक्त मण्डली' के साथ मिल कर पुंडरपुर गए। यह चंदन भागा नदी के किनारे है। जिसको गंगा की तरह दक्षिण में पूज्य नदी समझा जाता है। एक पण्डलीक भक्त हुआ है। वह पांडरंग बीठुल राय भगवान का उपासक था। वहां तिलोकेसर चक्रपाणि भगवान की मूर्ति थी, जो एक टांग के वजन पर ईंट के ऊपर खड़े हुए थे। उसका नाम बिठुल रखा हुआ था। जिसका अर्थ है-भगवान। हर कार्य उसकी दया से होता था और उसकी पूजा होती थी।

भक्त नामदेव जी ने पुंडरपुर का यश सुना हुआ था। जब वहां की भक्ति और सभा को आंखों से देखा तो वहीं टिक गए। उन्होंने फैसला किया कि 'बीठुल राय' की पूजा करते हुए ही जीवन व्यतीत करेंगे। चार दिन मेले में कीर्तन होता रहा। आनंद लेते रहे, सच्चे प्यार के कारण भगवान के दर्शन करते रहे। बहुत सारे लोगों को

पता लग गया कि नरसी ब्राह्मणी नगर वाले नामदेव जी यहीं हैं जिनको भगवान ने साक्षात् दर्शन दिए थे।

नामदेव जी एक दिन बीठुल भगवान के आगे समाधि लगा कर बैठे कि बीठुल जी के पैर हिला दिए। प्रेम की जंजीर में जकड़ा हुआ बीठुल स्वर्ग के सिंघासन को छोड़ कर नामदेव जी के सामने आ खड़ा हुआ। उसने वचन किया, 'भक्त ! तुम्हारी क्या लालसा है, तुम रात, दिन मुझे आराम से नहीं बैठने देते। स्मरण ही करते रहते हो।' नामदेव जी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की, 'हे दाता ! मैं क्या बताऊं ? मेरे पास कुछ नहीं रहा। आप ने दर्शन दे कर अपना बना लिया है। आंखों व हृदय में आप रहते हो।'

'प्रणवै नामदेउ लागी प्रीति ॥ गोबिंदु बसै हमारै चीति ॥'

वश की बात नहीं। दर्शनों को मन लोचता रहता है।

भक्त की प्रार्थना, उसकी मिन्नतें सुन कर प्रभु कृपालु हो गए। उन्होंने दर्शन देते हुए वचन किया, 'हे नामदेव ! तुम्हारी भक्ति स्वीकार ! जब याद करोगे दर्शन होंगे, तुम्हारे कार्य पूर्ण होंगे। मन की मुरादें पूरी होंगी। यदि तुम प्रभु के हो गए हो तो प्रभु तुम्हारा हो गया है।'

यह वचन करके भगवान बीठुल जी अदृश्य हो गए। नामदेव भक्ति में लगा रहा। कहते हैं, ऐसा मस्त हुआ विस्माद और वैराग की दुनिया में गया कि उसको कोई भी होश न रही। कई दिन बैठा प्रभु यश के गीत गाता रहा।

नामदेव जी की तीर्थ यात्रा

'घट घट पूरन ब्रहम है गुरमुख वेखालै ॥'

भक्तों को भक्त प्यारे होते हैं। संतों को संतजन अच्छे लगते हैं। नामदेव की महिमा होने लगी। उनके पास कई साधू-संत आते तथा

दर्शन करने के साथ वार्तालाप करते ।

महाराष्ट्र में एक प्रसिद्ध संत श्री ज्ञानेश्वर थे । वह भी भक्ति भाव वाले और आत्मिक तथा भगवान ज्ञान के ज्ञाता थे। उनकी दिव्य दृष्टि बड़ी दूर की थी । उन्होंने जब नामदेव के दर्शन किए तो कहा- 'नामदेव ! हम तीर्थों के दर्शनों को जा रहे हैं । आओ हमारे साथ चलो ।'

यह वचन सुन कर नामदेव जी ने प्रार्थना की-'महाराज ! इच्छा तो है पर बीठुल जी के दर्शन को मन आकर्षित करता है । कोई पेश नहीं जाने देते। चले गए तो दर्शन कैसे होंगे ?

यह सुन कर महात्मा बोले-'नामदेव ! यह एक भ्रम है, माया का पर्दा है । इतना कुछ करने पर माया का पर्दा दूर नहीं हुआ । तुम्हारा बीठुल सर्वशक्तिमान है । जैसे जड़ एक और पत्ते, फूल अलग ऐसा भेद है... ।'

ऐसे वचन करके महापुरुष ने नामदेव को ज्ञान उपदेश किया । माया तथा भ्रम का पर्दा दूर किया और वचन किया-'बीठुल (भगवान) हर जगह होने के साथ-साथ उसके प्रकाश के जब दर्शन होते हैं तो मन प्रसन्न होता है । तीर्थों पर जाने से ज्ञान में वृद्धि तथा महापुरुषों के दर्शन होते हैं । अनेकों संत मण्डलियां मिलती हैं । आओ ! आपका बीठुल हर जगह रहता दिखाएं ।'

जैसे आज्ञा महाराज ! आप ने ही मान रखना है । यह वचन करके नामदेव जी साथ चलने को तैयार हो गए ।

संत ज्ञानेश्वर जी की संत मण्डली नामदेव जी को साथ लेकर महाराष्ट्र में तीर्थों के दर्शन करने लगी । मध्य-भारत में घूमते हुए त्रिवेणी, काशी तथा हरिद्वार आदि तीर्थों के दर्शन किए। संत मण्डलियों के साथ ज्ञान चर्चा हुई तथा सत्य ही अनेक संत मण्डलियों के दर्शन हुए। नामदेव जी के मन का भ्रम दूर हो गया । उनका बीठुल हर

जगह रहता हुआ नज़र आया। मन मान गया, प्रसन्न हो गए। भगवान के दर्शन होने लगे।

मृत गाय सजीव करना

संत ज्ञानेश्वर जी की संत मण्डली के साथ तीर्थों की यात्रा करते हुए श्री नामदेव जी मथुरा-वृंदावन से दिल्ली (हस्तिनापुर) आ गए।

वृंदावन में जब नामदेव जी ने भगवान कृष्ण जी के मंदिरों में भगवान के दर्शन किए तो उनको श्री कृष्ण जी के रूप की जगह बीठुल जी के दर्शन हुए। एक महीना वृंदावन में ही संत मण्डली टिकी रही तथा दर्शन होते रहे।

दिल्ली में यमुना घाट पर संत मण्डली ने डेरा जमा दिया तथा भजन कीर्तन होने लगा। शहर के हिन्दू तथा सूफी मुसलमान संतों के दर्शनों के लिए आते।

बातों-बातों में जब श्री नामदेव जी की करामातों का शहर वासियों को पता लगा तो शहर वाले ज़ोर-शोर से आने लगे। बहुत शोभा हुई, नामदेव जी का यश होने लगा।

उस समय दिल्ली में तुर्कों का राज था। मुहम्मद बिन तुगलक दिल्ली का बादशाह था। यह बादशाह इस्लाम का प्रचारक, हिन्दू धर्म तथा हिन्दुओं से ईर्ष्या करता था। इसे पता लगा कि एक नामदेव हिन्दू दक्षिण की तरफ से आया है। उसको भगवान ने कई बार दर्शन दिए हैं। वह करामाती है, शक्ति वाला है। उनसे जो कोई भी मनोकामना मांगता है वही प्राप्त कर रहा है। कीर्ति सुन कर बादशाह ने वजीर भेज कर नामदेव जी को किले में आमंत्रित किया।

नामदेव जी का बादशाह के पास जाना था कि हिन्दुओं में मायूसी की लहर दौड़ गई। उन्होंने विचार किया कि कहीं बादशाह नामदेव जी को मरवा ही न दे, क्योंकि वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह

हिन्दुओं पर अत्यंत जुल्म करता था। हिन्दू इकट्ठे होकर बादशाह के पास गए। उनके नेताओं ने बादशाह के आगे प्रार्थना की, 'बादशाह सलामत ! नामदेव जी को छोड़ दिया जाए। उनके भार के बराबर तुला हुआ सोना हम से ले लो। बादशाह न माना। सारे हताश होकर मुड़ आए तथा सीधे ज्ञानेश्वर जी के पास जा कर प्रार्थना की- महाराज ! अपने शिष्य को बचाओ। यवन बादशाह अच्छी नीयत का नहीं, ईर्ष्यावादी है।

'हे भक्त जनो ! नामदेव जी का रक्षक उसका भगवान बीठुल है। चिंता मत करो। बादशाह ने बीठुल को नहीं बनाया, बीठुल ने बादशाह को पैदा किया। जो अपने मालिक के साथ मुकाबला करता है, वह कभी जीत नहीं सकता। देखो, भगवान क्या खेल करता है ? चिंता मत करो। भगवान का नाम लो।'

संत जी के यह वचन सुन कर श्रद्धालुओं को संतोष हुआ।

बादशाह ने नामदेव को पास बुला कर कहा-'सुना है तुम बहुत करामाती हो। खुदा तुम्हारा कहना मानता है। यदि यह बात सत्य है तो अपने भगवान को कह वह मरी गाय जीवित करे।'

बादशाह की यह बात सुन कर नामदेव जी ने वचन किया-

सुलतानु पूछै सुनु बे नामा ।। देखउ राम तुम्हारे कामा ।।१।।
नामा सुलताने बाधिला ।। देखउ तेरा हरि बीठुला ।।१।। रहाउ ।।
बिसमिलि गऊ देहु जीवाई ।। नातरु गरदनि मारउ ठांई ।।२।।

(पन्ना ११६५)

भाव-सुल्तान (बादशाह) ने पूछा-सुन नामदेव ! तेरे राम के मैं चमत्कार देखना चाहता हूं। नामदेव को सुल्तान ने बांध लिया। कहने लगा तुम्हारा हरि भगवान देखता है। इस समय मरी हुई गाय जीवित करो, नहीं तो सिर धड़ से अलग कर दिया जाएगा।

नामदेव जी ने वचन किया-'बादशाह ! भगवान का संबंधी कोई

नहीं। यदि भगवान ने गाय को मारा है तो मैं कौन हूं, उसको जीवित करने वाला ? वह तो स्वयं भगवान की इच्छा से ही जीवित हो सकती है।

बादशाह-'मैंने सुना है तुमने बहुत सारी करामातें दिखाई हैं। पत्थर की मूर्ति को मनुष्य की तरह दूध पिलाता रहा है। क्या यह सत्य है ?'

नामदेव-'मुझे तो पता नहीं करामात किसे कहते हैं ? मैं तो यह जानता हूं कि प्रभु सुमिरन अच्छा है। संत मण्डलियों के साथ हरि कीर्तन करता तथा सुनता हूं। यदि भगवान कोई चमत्कार करता है तो वह भगवान की लीला है। आप ने बुलाया तो आ गया, भेजोगे तो चला जाऊंगा।

बादशाह-'हम कुछ नहीं सुनना चाहते। बताओ गाय जीवित करोगे या नहीं ? ज्यादा बातें बनाने की दरबार में आज्ञा नहीं, एक बात बताओ।'

नामदेव-'मैं कुछ नहीं जानता, मेरे बीठुल जाने, जैसा वो चाहे वैसा ही होगा।' आप प्रजा पर जुल्म करते हो। जिसने बादशाह बनाया है, उसको याद नही करते।

यह सुन कर बादशाह क्रोधित हो गया। उसने वजीरों की तरफ देखा, फिर नामदेव जी को कहा-'अच्छा ! एक पहर समय की मोहलत दी जाती है। इसी समय गाय जीवित कर दो नहीं तो सब के देखते कत्ल कर दिए जाओगे। हाथी के पैरों के नीचे कुचल दिए जाओगे। यही मेरा हुक्म है। लोगों को धोखा देकर पीछे लगाते हो। 'यह कह कर बादशाह महलों में चला गया।

नामदेव जी कैद थे। उनके हाथ बंधे हुए थे, सिपाहियों के पहरे में उनको बिठाया हुआ था। सात घड़ियां बीत गईं पर गाय न हिली, वह उसी तरह मृत पड़ी रही। अद्‌भुत कौतुक था। लोग हैरान थे

कि यदि गाय न उठी तो नामदेव जी को बादशाह जरूर मार देगा। लोग भगवान के आगे प्रार्थना कर रहे थे।

बादशाह घर गया तो उसको उदर पीड़ा होने लगी। वह क्षण में ही इतना तंग हुआ कि उसके बचने की कोई उम्मीद न रही। शाही हकीम भाग-दौड़ करने लगे।

बादशाह की आंखों के आगे नामदेव जी का चित्र था। कभी-कभी उनका चित्र दूसरी तरफ होता तो भयानक सूरतें नज़र आतीं। वह चिल्लाने लगा-'बचाओ ! मुझे बचाओ।'

बादशाह के सूझवान वजीर ने कहा-'बादशाह सलामत स्वस्थ हो सकते हैं, शायद नामदेव जी को पकड़ने के कारण खुदा नाराज़ हो गया हो, जान के बदले में उसको छोड़ देना चाहिए, वह खुदा का बंदा है, हो सकता है खुदा नाराज़ हो गया हो।

यह बात बादशाह के मन को छुई। उसने उसी समय हुक्म दिया 'छोड़ दो।'

हुक्म हुआ, पर उधर और ही खेल हो चुका था। बादशाह के आदमियों ने जब देखा, देर हो रही थी तो उन्होंने बादशाह के पहले हुक्म के अनुसार नामदेव जी को उठा कर हाथी के आगे फैंक दिया। हाथी पहले तो घबराया। उसने खुदा के बंदे को देखा, पर एक बार उठा कर फैंका। उस बाबत नामदेव जी आप ही बताते हैं-

'करै गजिंदु सुंड की चोट ॥ नामा उबरै हरि की ओट ॥८॥

उसी समय वजीर वहां पहुंच गया। उसने जल्लादों को बादशाह का हुक्म सुनाया तथा नामदेव जी के हाथ पैर खोले गए। उधर गाय भी उठ बैठी। लोग तथा वजीर समस्त लोग आश्चर्यचंकित हुए।

नामदेव जी ने बादशाह को उपदेश दिया। उसका दुःख दूर किया। इस बाबत भक्त नामदेव जी की अपनी बाणी का यह पूरा शब्द है-

सुलतानु पूछै सुनु बे नामा ॥ देखउ राम तुम्हारे कामा ॥१॥

नामा सुलताने बाधिला ।। देखउ तेरा हरि बीठुला ।।१।। रहाउ ।।
बिसमिलि गऊ देहु जीवाई ।। नातरु गरदनि मारउ ठांई ।।२।।
बादिसाह ऐसी किउ होई ।। बिसमिलि कीआ न जीवै कोई ।।३।।
मेरा कीआ कछू न होइ ।। करि है रामु होइ है सोइ ।।४।।
बादिसाहु चढ़िओ अहंकारि ।। गज हसती दीनो चमकारि ।।५।।
रुदनु करै नामे की माइ ।। छोडि रामु की न भजहि खुदाइ ।।६।।
न हउ तेरा पूंगड़ा न तू मेरी माई ।। पिंडु पड़ै तउ हरि गुन गाई ।।७।।
करै गजिंदु सुंड की चोट ।। नामा उबरै हरि की ओट ।।८।।
काजी मुलां करहि सलामु ।। इनि हिंदू मेरा मलिआ मानु ।।९।।
बादिसाह बेनती सुनेहु ।। नामे सर भरि सोना लेहु ।।१०।।
मालु लेउ तउ दोजकि परउ ।। दीनु छोडि दुनीआ कउ भरउ ।।११।।
पावहु बेड़ी हाथहु ताल ।। नामा गावै गुन गोपाल ।।१२।।
गंग जमुन जउ उलटी बहै ।। तउ नामा हरि करता रहै ।।१३।।
सात घड़ी जब बीती सुणी ।। अजहु न आइओ त्रिभवन धणी ।।१४।।
पाखंतन बाज बजाइला ।। गरुड़ चढ़े गोबिंद आइला ।।१५।।
अपने भगत परि की प्रतिपाल ।। गरुड़ चढ़े आए गोपाल ।।१६।।

(पन्ना ११६५-६६)

देहुरा घूमना

संत मण्डली के साथ विचरण करते हुए नामदेव जी कपिलधारा मंदिर में चले गए। वहां आगे मंदिर में पूजा हो रही थी। अपने भगवान बीठुल के दर्शन करने के लिए वह भी विराज गए। क्योंकि प्रभु के बिना किसी अन्य से लगाव नहीं करते थे। केवल प्रभु से ही प्यार था। जैसे फरमाते हैं-

जैसी भूखे प्रीति अनाज ।। त्रिखावंत जल सेती काज ।।
जैसी मूड़ कुटंब पराइण ।। ऐसी नामे प्रीति नराइण ।।१।।

नामे प्रीति नाराइण लागी । सहज सुभाइ भइओ बैरागी ।।१।। रहाउ ।।
जैसी पर पुरखा रत नारी ।। लोभी नरु धन का हितकारी ।।
कामी पुरख कामनी पिआरी ।। ऐसी नामे प्रीति मुरारी ।।२।।
साई प्रीति जि आपे लाए । गुर परसादी दुबिधा जाए ।।
कबहु न तूटसि रहिआ समाई ।। नामे चितु लाइआ सचि नाइ ।।३।।
जैसी प्रीति बारिक अरु माता ।। ऐसा हरि सेती मनु राता ।।
प्रणवै नामदेउ लागी प्रीति ।। गोबिंदु बसै हमारै चीति ।।४।।१।।७।।

(पन्ना ११६४)

जिसका परमार्थ–नामदेव जी फरमाते हैं, मेरी परमात्मा से ऐसी प्रीति है जैसी कि भूखे की अन्न से, प्यासे की पानी से, ऐसी नामदेव की प्रीति भगवान से है। उस प्रीत के लगने से स्वाभाविक ही आप वैरागी हो गए हैं। आप आगे फरमाते हैं, जैसी किसी पुरुष की पराई नारी के साथ प्रीति होती है। लालची दौलत के साथ प्यार करता है। पर यह वह प्रीति है, जो स्वयं लगाता है। गुरु की कृपा से सारे भ्रम मिटते रहते हैं। जैसे एक बच्चे तथा मां का प्यार होता है वैसे मेरी तथा हरि की प्रीति है। अंत में कहते हैं कि हरि परमात्मा हमारे मन में रहता है।

बात क्या स्वयं मंदिर में जा बैठे तथा परमात्मा का यश करने लगे। मंदिर के पुजारियों को पता लगा कि दक्षिण में से आया यह नामदेव भक्त जाति से छींबा है। छींबा जाति को उस समय निम्न जाति समझते थे। ब्राह्मण लोग उन्होंने नामदेव जी के पास आकर उनको पूछा–'आप जन्म से छींबे हो ?'

नामदेव जी–'हां, भाई ! ऐसा ही कहते हैं।',

पंडित–'फिर आप यहां से उठ जाओ। इस मंदिर में उच्च कुल पुरुष ही पूजा कर सकते हैं।'

नामदेव जी–'वे कौन लोग ?'

पंडित-'ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आदि ।'

नामदेव जी-'यह आपको भ्रम है। हर प्राणी एक-समान है। जन्म के कारण कोई बुरा या अच्छा नहीं होता। अच्छा-बुरा तो कर्मों के कारण होता है। जो कोई जैसा कर्म करता है वैसा ही वह फल पाता है। भगवान के लिए सभी नर-नारी उसी तरह प्यारे हैं, जैसे एक पिता के लिए सारे पुत्र प्यारे होते हैं। चाहे कोई कम कार्य करता है, चाहे कोई ज्यादा। प्रभु तो सबका है।'

पर पंडित ने एक बात न मानी। उन्होंने भक्त नामदेव जी को बाजू से पकड़ कर उठा दिया।

भक्त नामदेव जी उठ बैठे। उठकर सीढ़ियां उतरते हुए अपने मालिक बीठुल को याद करते रहे। उन्होंने अपनी बाणी में बताया है कैसे अपने मालिक बीठुल जी को याद किया तथा प्रार्थना की, लोग चाहे बुरा कहें, मंदिरों में से उठा दें, पर आप मत उठाना। आप भक्त को मत भुलाना।

मो कउ तूं न बिसारि तू न बिसारि ।। तू न बिसारे रामईआ ।।१।।
रहाउ ।। आलावंती इहु भ्रमु जो है मुझ ऊपरि सभ कोपिला ।।
सूदु सूदु करि मारि उठाइओ कहा करउ बाप बीठुला ।।१।। मूए
हूए जउ मुकति देहुगे मुकति न जानै कोइला ।। ए पंडीआ मो
कउ ढेढ कहत तेरी पैज पिछंउडी होइला ।।२।।

(पन्ना १२९२)

हे प्रभु ! मुझे तुम न छोड़ना ! तुम न छोड़ना ! हे दाता ! मंदिर वालों को शक है कि मैं नीच हूं। नीच होने के कारण उन्होंने मुझे मार-पीट कर मंदिर में से निकाल दिया है। अब बताओ दाता ! मुझे क्या करना चाहिए। हे प्रभु ! क्या कहते हो ! निर्जीव हुए को मुक्त करोगे ? वह मुक्ति किस काम ? उसे किस ने जानना है ? यह ब्राह्मण मुझे छींबा कहते हैं यदि अब तुम ने कोई चमत्कार न

दिखाया तो निंदा होगी। लोग भक्ति नहीं करेंगे। हे दयालु ! हे कृपालु ! सब तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। अपनी बाजुओं का बल दिखाओ।

हसत खेलत तेरै देहुरे आइआ । भगति करत नामा पकरि उठाइआ ॥१॥ हीनड़ी जाति मेरी जादिम राइआ । छीपे के जनमि काहे कउ आइआ ॥१॥ रहाउ ॥ लै कमली चलिओ पलटाई ॥ देहुरै पाछै बैठा जाइ ॥२॥ जिउ जिउ नामा हरिगुण उचरै ॥ भगत जनां कउ देहुरा फिरै ॥३॥६॥

(भैरउ नामदेव जी, पन्ना ११६४)

भाव–हे प्रभु ! खुशी–खुशी हंसता हुआ तुम्हारे मंदिर में आया था, तुम्हारी भक्ति करते हुए पंडितों ने मुझे पकड़ कर रोक दिया है। हे श्री कृष्ण जी ! मेरी जाति निम्न है। मैंने छींबा जाति में क्यों जन्म लिया ?

कम्बली (भूरी) कंधों पर रखकर नामदेव चल पड़ा। ठाकुर द्वारे के पिछवाड़े जा बैठा। जैसे–जैसे नामा हरि के गुण गाए जाता था, वैसे–वैसे पंडितों का ठाकुर द्वारा घूमता जाता था। जैसे भूचाल आता है वैसे मंदिर हिल पड़ा। सब समझे कि सचमुच भूचाल आ गया। कई फटाफट छलांगें मार कर मंदिर की कुर्सी से नीचे उतर आए। कांपता हुआ तथा सरकते–सरकते ठाकुर द्वारा घूम गया। जैसे किसी ने स्वयं घुमाया होता है। नीचे पहिये लगाए होते हैं। जहां नामदेव जी बैठे भक्ति कर रहे थे, वहां जाकर मंदिर खड़ा हो गया पर नामदेव जी आंखें बंद करके शब्द पढ़ते जा रहे थे। हाथों में पकड़े छैनों की आवाज़ वायु–मण्डल में गूंज रही थी। धरती डगमगा रही थी। ब्राह्मणों में दो सूझवान पंडित थे। वह तुरंत नामदेव जी के चरणों में गिर पड़े कि कहीं मंदिर तथा शहर ही नष्ट न हो जाए। उन्होंने नामदेव जी के चरण पकड़ लिए। प्रार्थना की, 'प्रभु के प्यारे ! समाधि खोलो ! हमारी भूलें बख्शो। हम पापी ! निंदक ! पांडे क्षमा करो,

रहम करो मासूम बच्चों पर ! उनकी प्रार्थना ने नामदेव जी की समाधि खोल दी। जब आंखें खोल कर देखा तो ठाकुर द्वारे का मुंह नामदेव जी की तरफ था। उन्होंने शीघ्र उठ कर डण्डवत प्रणाम किया। परमात्मा की प्रशंसा की। भक्त नामदेव जी को पकड़ कर मंदिर में से उठाने वाले पंडित बड़े लज्जित हुए तथा धरती उनको टिकने नहीं देती थी। फिर भी वह अभिमानी नामदेव जी के चरणों में न लगे। मंदिर से बाहर चले गए।,

नामदेव जी का बेगारी बनना

भगवान के चमत्कार बड़े अनोखे और आश्चर्यजनक होते हैं। वह प्रभु अनेकों बार अद्भुत ही खेल करता है। हे भक्त जनो ! सुनो ! श्री नामदेव जी जब तीर्थों की यात्रा कर रहे थे तो एक ऐसे शहर जा निकले जहां पठानों का राज था। पठान हाकिम होने के कारण बड़े अभिमानी थे। वह जिस हिन्दू को देखते उसी को बेगारी बना लेते थे। उनको न किसी का भय और न डर, वह ऐसे ही थे।

नामदेव जी अपने मन की मस्ती में अकेले ही एक तरफ को चल पड़े। संत मण्डली से बिछुड़ गए। बाजार में जा रहे थे तो एक पठान मिला। वह अहंकारी पठान था। उसने मिलते ही बड़े रौब में कहा, 'यह भार उठा कर ले चलो, ऐसे ही घूमते फिर रहे हो।'

नामदेव जी ने कोई उत्तर न दिया। उन्होंने भार सिर पर उठा लिया और चल पड़े। आगे-आगे पठान चलता जा रहा था तथा पीछे-पीछे नामदेव जी। नामदेव जी को ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे उनको भार उठवाने वाला पठान नहीं था बल्कि उनका बीठुल था। वह अपने इस बीठुल का यश करने लग पड़े। उन्होंने इस तरह उच्चारण किया-

हले यारां हले यारां खुसिखबरी ।। बलि बलि जांउ हउ बलि बलि जांउ ।। नीकी तेरी बिगारी आले तेरा नाउ ।।१।। रहाउ ।।

कुजा आमद कुजा रफती कुजा मे रवी ।। द्वारिका नगरी रासि बुगोई ।।१।। खूबु तेरी पगरी मीठे तेरे बोल ।। द्वारिका नगरी काहे के मगोल ।।२।। चंदी हजार आलम ऐकल खानां ।। हम चिनी पातिसाह सांवले बरनां ।।३।। असपति गजपति नरह नरिंद ।। नामे के स्वामी मीर मुकंद ।।४।।२।।३।।

(पन्ना ७२७)

भाव–हे मित्र, हे सज्जन, अपनी प्रसन्नता की सूचना दो, खुश हो ? मैं तुम पर कुर्बान जाता हूं। तुम्हारी बगार बहुत अच्छी है। तुम्हारा नाम बहुत बड़ा (आली) है। कुजा आमदन कहां से आए ? कुजा रफ्ती कहां गया था ? कुजा मेरवी कहां चला है ? यह द्वारिका नगरी है। यहां सत्य बताना मुगल गालियां निकाल रहा था। नामदेव जी उसको कहते है तुम्हारी पगड़ी कितनी सुन्दर हैं ? तुम्हारे बोल मीठे हैं। द्वारिका में मुगल कहां ? तुम तो हरि के रूप हो। तुम अश्वपति घोड़ों के मालिक सूर्य हो। तुम ही गजपति–हाथियों के मालिक इन्द्र हो। नरहि नरिंद–मनुष्य के राजा ब्रह्मा तथा तुम मेरे सरदार मुकंद (मुक्ति देने वाले) हो।

सूखे कुएं में पानी

पंजाब के तीर्थों की यात्रा करके भक्त मण्डली ने पीछे मुड़ना था। इनकी सलाह हुई कि देश के रेतीले हिस्से द्वारा वापिस मुड़ा जाए ताकि इस इलाके के जीवों में भी हरि नाम का प्रचार किया जाए। चलते–चलते संत मण्डली बीकानेर में पहुंची। राजपूताने में से होकर इनको अजमेर जाना था। बीकानेर में 'कैलावत जी' स्थान पर पहुंचे तो इनको प्यास लगी, पर रेत के मरुस्थलों में पानी कहीं नहीं था। सूरज के ताप से आकाश, वायु मण्डल तथा धरती एक जलती हुई भट्ठी बने हुए थे, सारी संत मण्डली प्यास से मरने लगी। योग के

बल से ज्ञानेश्वर ने देखा कि दो सौ गज पर कुंआ तो है, पर उसका पानी सूखा हुआ है। उसने संत मण्डली को कहा कि भगवान का सहारा लेकर थोड़ा रास्ता और तय करो। फिर शायद जल मिल जाए। उन साधुओं ने हौंसला किया और प्रभु का सिमरन करते हुए सूखे कुएं के पास पहुंच गए। कुंआ खंडहर हो चुका था। सारा पूरकर फिर घास उगा हुआ था। ज्ञानेश्वर ने कहा, 'प्रभु के प्रेमियो ! मैं बर्तन लेकर नीचे जाता हूं और जल लेकर लौटता हूं। संतों को जल चाहिए था। उन्होंने अनुमति देते ढील न की। ज्ञानेश्वर जी करमंडल लेकर नीचे गए। योग विद्या के बल पर धरती पर पहुंचे व जल आदि पीकर संतों के लिए करमंडल भरकर ले आए। सारे संतों ने पानी पीकर अपनी प्यास बुझाई। जब नामदेव जी को पानी पीने के लिए आग्रह किया तो भक्त जी ने उत्तर दिया, 'मेरी रक्षा मेरा बीठुल करता है। यदि उसे मेरी आवश्यकता है तो इस कुएं में से पानी ऊपर करेगा, नहीं तो पानी नहीं पीना, मृत्यु स्वीकार है।'

यह कहकर भक्त जी कुएं के किनारे रोष पूर्वक बैठ गए। बीठुल का नाम जपना शुरू कर दिया। कुछ आधे घंटे के बाद कड़क हुई। संतों ने कुएं में झांक कर देखा कि मिट्टी का घड़ा जो कुएं में बंधा हुआ था, वह अपने आप टूट गया। धीरे-धीरे सारी मिट्टी लुप्त हो गई। कुएं में से शुद्ध और शीतल जल देख कर सभी ने खुशी मनाई तथा प्रसन्न होकर नामदेव जी को आवाज़ें दीं। उनकी आवाज़ें सुनकर नामदेव जी ने कहा, 'मेरे बीठुल ने जल भेज दिया, मेरी विनती उन्होंने सुन ली।'

उठे तथा करमंडल द्वारा शीतल जल बाहर निकाल कर पीया।

ऐसी शक्ति एवं भक्ति देख कर सारी संत मण्डली नामदेव जी के चरणों में झुक गई तथा नामदेव जी स्वयं यूं प्रभु का यशगान करने लगे-

मोहि लागती तालाबेली ।। बछरे बिनु गाइ अकेली ।।१।। पानीआ बिनु मीनु तलफै ।। ऐसे राम नामा बिनु बापुरो नामा ।।१।। रहाउ ।। जैसे गाइ का बाछा छूटला ।। थन चोखता माखनु घूटला ।।२।। नामदेऊ नाराइनु पाइआ ।। गुर भेटत अलखु लखाइआ ।।३।। जैसे बिखै हेत पर नारी ।। ऐसे नामे प्रीती मुरारी ।।४।। जैसे तापते निरमल घामा ।। तैसे राम नामा बिनु बापुरो नामा ।।५।।४।।

(पन्ना ८७४)

बीठुल जी के चरणों में

तीर्थ यात्रा करके भक्त नामदेव जी फिर पुंडरपुर लौट आए। पुंडरपुर पहुंचते ही वह अपने भगवान बीठुल जी के चरणों में पधारे। चरणों में माथा झुका कर वृति जोड़ी तथा पुकार-पुकार कर कहने लगे- 'हे मेरे बीठुल ! आपके चरणों के अलावा मेरा मन कहीं भी नहीं लगता। मुझे शांति प्राप्त नहीं हुई चाहे हर जगह आपका रूप नज़र आता रहा। आह ! यहां आकर तो मन तृप्त हो गया है।

अनमड़िआ मंदलु बाजै ।। बिनु सावन घनहरु गाजै ।।
बादल बिनु बरखा होई ।। जऊ ततु बिचारै कोई ।।१।।

हे ईश्वर ! यहां आकर तो दसवें द्वार में सुरति ऐसी जुड़ी है कि आज बिना किसी साज के जैसे अनमड़ी ढोलक, बाजे साज बजने की लय उत्पन्न हो रही है। श्रावन ऋतु के बिना ही प्रेम रूपी बादल गरजने लग पड़े तथा नाम, शांति और प्रभु प्यार की वर्षा होने लग पड़ी। बस समझो तत को विचार कर आनंद मंजिल में पहुंच गया हूं, मृगतृष्णा मिट गई, भ्रम-भेद खत्म हो गए। विशालता आ गई सुरति पहुंच गई दसवें द्वार।

मो कउ मिलिओ रामु सनेही ।। जिह मिलिऐ देह सुदेही ।।१।। रहाउ ।।
मिलि पारस कंचनु होइआ ।। मुख मनसा रतनु परोइआ ।।

हे बीठुल जी ! आपका मित्र मिला तथा उसने मुझे आपका मित्र बना दिया। राम ही राम ! राम रूप मित्र मिलने के साथ मेरा यह शरीर सफल हो गया। यदि शरीर राम का सिमरन न करता, आपके चरणों में न आता तो पता नहीं इसके साथ क्या बीतता ? अब तो ऐसा हुआ है जैसे पारस से मिल कर लोहा भी सोना बन जाता है। पारस रूप आप थे। मुख में नाम रूपी मणि है। भाव प्रभु यश के बिना–

निज भाउ भइआ भ्रमु भागा ।। गुर पूछे मनु पतीआगा ।।२।।
जल भीतरि कुंभ समानिआ ।। सभ रामु ऐकु करि जानिआ ।।
गुर चेले है मनु मानिआ ।। जन नामै ततु पछानिआ ।।३।।

हे प्रभु ! आपका प्यार मिला तो भ्रम का नाश हो गया। गुरु के पूछने पर मन मान गया। अब तो उस घड़े वाली बात है जैसे पानी भरने के लिए घड़ा ले जाए। घड़ा हाथ से छूट जाने पर पानी से भर कर पानी में ही डूब कर एक रूप हो गया। मेरी आत्मा को जो माया ने जकड़ा था, माया का हाथ खिसक गया तथा आत्मा आपके प्यार में डूब गई। बस अब मन ने मान लिया है कि एक राम ही सब जगह बसता है। गुरु तथा शिष्य में भेद नहीं रहा, तत विचारने के कारण इस भेद को नामदेव जी कहते हैं, हमने पा लिया है।

इस प्रकार नामदेव जी अपने बीठुल के आगे वचन करते रहे। प्रार्थना करते हुए कहते रहे, 'हे प्रभु अपने चरणों में जगह दीजिए, कृपा करो।'

तीर्थ यात्रा करते हुए घटित हुई घटनाओं का पता पुंडरपुर के लोगों को लग गया। सारे लोग रोज़ सुबह आकर नामदेव जी के दर्शन करके आनंदित हो गए तथा 'भक्त भक्त जग बजा।' जो दर्शन करता उसके कार्य पूर्ण हो जाते, मन के भेदभाव दूर होते तथा तन के रोग खत्म होते। दर्शन करने के गरीबी दूर होती। नामदेव जी का यश चारों

ओर फैल गया। ऐसी प्रभु की कृपा हुई।

नामदेव जी का नया घर

पुंडरपुर के निकट 'चन्दन भगा' नदी बहती थी। उस नदी के किनारे नामदेव जी जा बैठते तथा ईश्वर भक्ति में जुड़ जाते। अपने मालिक प्यारे परमात्मा को याद करते। एक दिन लिव जोड़ कर बैठे थे कि किसी ने जा कर कहा, 'हे नामदेव जी ! आपके घर को आग लग गई है। सारा घर जल गया। शीघ्र चलो।'

आग लग गई। आग लगाई लगाने वालों ने। मेरा घर कैसे हुआ, उसका ही था। जला दिया उसने स्वयं, मैं क्या कहूं ? नामदेव जी ने उत्तर दिया।

फिर भी ज़ोर देने पर भक्त जी उठ कर आए तथा आकर जलते हुए त्रिण के घर को देखते रहे। मन में ऐसा विचार आया कि लोगों ने जो घर की चीज़ें बचा कर रखी थीं, उनको उठा-उठा कर आग में फैंकने लग पड़े तथा मुंह से कहने लगे-हे प्रभु ! यह जो चीज़ें लोगों ने बचाई हैं, इनको भी साथ ले जाओ ! मैं इनका क्या करूंगा। यदि घर नहीं रहा तो चीज़ें मैं कहां रखूंगा। ले जाओ, ले जाओ।'

भक्त जी का यह कौतुक देख कर लोग बहुत हैरान हुए तथा रोकने का यत्न करने लगे। पर भक्त जी न रुके। वह चीज़ों को फैंकते गए। उनको भगवान के प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे थे। भगवान ने कहा, 'हे नामदेव ! इस आग में भी तुम्हें मेरा स्वरूप ही दिखता है ?'

हे प्रभु ! यह आग भी आपकी बनाई है। आप ही जला रहे हो तथा आपका ही सारा खेल है। मेरा नहीं, सब कुछ आपका है।

इस तरह भक्त और भगवान के बीच बात होती रही। भक्त की सारी चीज़ें नहीं जली थीं कि आग अपने आप धीमी हो गई। एकदम बुझ गई तथा भक्त जी एक वृक्ष के नीचे रात को सो गए।

सुबह हुई तो लोग देख कर स्तब्ध हुए कि नामदेव जी का घर नया बना हुआ था। रातो-रात घर बन गया। ऐसी झोंपड़ी बनी कि जैसी किसी ने देखी नहीं थी। सफाई थी तथा लकड़ियां बहुत ही प्रेम से चुन-चुन कर लगाई थीं। सबसे अद्भुत बात यह थी कि घर का सामान सारा नया आ गया था। जले का नामो-निशान न रहा।

लोगों ने जैसे आकर भक्त नामदेव जी को पूछा। उन्होंने अपने एक शब्द में इस प्रकार सारी वार्ता ब्यान की है-

पाड़ पड़ोसणि पूछि ले नामा का पहि छानि छवाई हो ॥
तो पहि दुगणी मजूरी दैहउ मो कउ बेढी देहु बताई हो ॥१॥
रीबाई बेढी देनु न जाई ॥ देखु बेढी रहिओ समाई ॥
हमारै बेढी प्रान अधारा ॥१॥ रहाउ ॥
बेढी प्रीति मजूरी मांगै जउ कोऊ छानि छवावै हो ॥
लोग कुटंब सभहु ते तोरै तउ आपन बेढी आवै हो ॥२॥
ऐसो बेढी बरनि न साकउ सभ अंतर सभ ठांई हो ॥
गूंगै महा अंम्रित रसु चाखिआ पूछे कहनु न जाई हो ॥३॥
बेढी के गुन सुनि री बाई जलधि बांधि ध्रू थापिओ हो ॥
नामे के सुआमी सीअ बहोरी लंक भभीखन आपिओ हो ॥४॥२॥

(पन्ना ६५७)

भाव-नामदेव जी की पड़ोसनें पूछती हैं कि हे नामदेव ! बताओ तो सही, किससे झोंपड़ी बनवाई है ? यदि हमें बढ़ई (कारीगर) का पता दो तो तुम से दुगुनी मजदूरी देंगे।

नामदेव जी उत्तर देते हैं, 'हे बहन ! वह कारीगर बिल्कुल नहीं दिया जाता। वह तो हर जगह समाया हुआ है। मेरे तो वह प्राणों का सहारा है। हां, यदि कोई उस कारीगर से मजदूरी पर काम कराए तो उसकी मजदूरी प्रेम है। सारे परिवार, रिश्तेदारों तथा अन्य मित्रों से अलग हो तो वह कारीगर मिलता है। ऐसे कारीगर (बेढी) को

मैं ब्यान नहीं कर सकता। वह हर जगह उपस्थित है। जिस तरह गूंगा पुरुष किसी रस के स्वाद को नहीं बता सकता, वैसे मैं उसके गुणों को ब्यान नहीं कर सकता। हे माता ! सुनो, उस कारीगर ने सारे जगत को एक स्तर पर रखा है। सागर पर उसका राज है। तारे, आकाश, धरती तथा वनस्पति उसके हुक्म में हैं। जिस तरह श्री राम चन्द्र जी ने लंका पर चढ़ाई करके प्यारी सीता को पाया तथा सोने की लंका राजा रावण को मार कर विभीषण को दे दी। उसी तरह भगवान ने नामदेव जी के ऊपर कृपा की है। हे लोगो ! यह सब प्रभु का खेल है। उसने ऐसी खेल की है, मैं क्या बताऊं ?

यह चमत्कार देख कर सारे लोग दिल से भक्त जी के चरणों में गिर पड़ें तथा जान गए कि भक्त जी तथा भगवान में अब कोई अन्तर नहीं रह गया। जो प्रभु की भक्ति शुद्ध हृदय से करता है उसके कार्य सम्पूर्ण होते हैं तथा प्रभु उसकी स्वयं देखरेख करता है। 'हे श्रद्धालु जनो !' भक्त जी ने लोगों को उपदेश दिया-'प्रभु बीठुल का नाम जपो, उस पर भरोसा रखो। वह तुम्हारे सारे कार्य संवारेगा। राम नाम में ऐसी बरकतें हैं।'

भक्त नामदेव जी का परलोक गमन

परमात्मा की ऐसी लीला है, जो कोई जन्म लेता है, अंत : उसका शरीर नष्ट हो जाता है। आत्मा चोला छोड़ जाती है। आपके गुरुदेव ज्ञानेश्वर जी परलोक गमन कर गए तो आप कुछ उपराम रहने लगे। दो बार तीर्थ यात्रा की तथा साधू-संतों से भ्रम दूर करते रहे। ज्यों-ज्यों आपकी आयु बड़ी होती गई त्यों-त्यों आपका यश फैलता गया। आप ने दक्षिण में बड़ा प्रचार किया।

अंतिम दिनों में आप पंजाब आ गए। उस समय पंजाब में सूफी फकीरों तथा सुल्तानियों का अधिकतर प्रचार था। पठानों का राज

था। हिन्दू धर्म कमज़ोर हो गया था। बारों में बाबा फरीद जी का प्रचार था। जंगली लोग धड़ाधड़ मुसलमान बनते जा रहे थे। नामदेव जी पंजाब में घूमे। लोगों को ईश्वर भक्ति की तरफ लगाया तथा आप ने बाणी उच्चारण की, जो बाणी श्री गुरु ग्रंथ साहिब में भी मिलती है। बहुत सारी बाणी दक्षिण तथा महाराष्ट्र में गाई जाती है। ज़िला गुरदासपुर गांव घुमान में आपकी यादें हैं।

अंत में आप अस्सी साल की आयु में १४०७ विक्रमी को परलोक गमन कर गए। आपकी बाणी पढ़ने से मन को शांति आती है तथा भक्ति की तरफ मन लगता है। हे भक्त जनो ! यह भी शिक्षा मिलती है कि परमात्मा ने सब जीवों को एक-सा जन्म दिया है। माया की कमी या जीवन के धन्धों के कारण लोगों तथा कई चालाक पुरुषों ने ऐसी मर्यादा बना कर ऊंच-नीच का अन्तर डाल दिया। उस अन्तर ने करोड़ों प्राणियों को नीचा बताया, पर जो भक्ति करता है वह नीच होते हुए भी पूजा जाता है।

परमात्मा भक्तों से प्यार करता है। भक्ति ही भगवान को प्रिय लगती है। भक्ति रहित ऊंचा जीवन शूद्र का जीवन है। भगवान राम जी ने भीलनी के बेर खाकर उसको मान प्रदान किया। उसी भीलनी ने जिसको पंपासर के ऋषि नीच जाति की समझ कर उसको जल नहीं पीने देते थे, पर जब जल में कीड़े पड़ गए तो भीलनी के पैर डालने से ही पंपासर का जल दोबारा पवित्र हुआ था। कभी किसी को नीचा न समझो, सब स्त्री-पुरुष ईश्वर की संतान हैं। नाम का सिमरन करो।

भक्त जै देव जी

प्रेम भगति जै देऊ करि गीत गोबिंद सहज धुनि गावै।
लीला चलित वखानदा अंतरजामी ठाकुर भावै।

अखर इक न आवड़ै पुसतक बंनि संधिआ करि आवै ।
गुन निधान घर आई कै भगत रूप लिख लेख बनावै ।
अखर पड़ प्रतीत करि हुई विसमाद न अंग समावै ।
वेखे जाई उजाड़ विच बिरख इक असचरज सुहावै ।
गीत गोबिंद संपूरनो पतु पतु लिखिआ अंत न आवै ।
भगत हेत प्रगास करि होई दइआल मिलै गल लावै ।
संत अनंत न भेद गनावै ।१०।

(भाई गुरदास जी)

भाई गुरदास जी ने जै देव भक्त जी का यश इस प्रकार गाया है। यह भक्त बंगाल में हुआ है तथा आपका जन्म गांव केंदल ज़िला बीर भूम (बंगाल) में हुआ। आपके माता-पिता गरीब थे। मां बाम देवी तथा पिता भोज देव थे। वह जाति से ब्राह्मण थे। गरीबी होने के साथ-साथ आपके पास समझदारी थी। इसलिए जै देव जी को उन्होंने पाठशाला में बंगला तथा संस्कृत पढ़ने के लिए भेज दिया। ग्यारहवीं सदी में बंगाल में हिन्दू राज था। संस्कृत साधारणता पढ़ाई जाती थी। एक ब्राह्मण के पुत्र के लिए संस्कृत पढ़ना ज़रूरी था। संस्कृत पढ़ने के साथ आप राग भी सीखते रहे और अपने आप गीत गाने लग जाते थे।

जै देव जी की विद्या पूरी भी नहीं हुई थी कि उनके माता-पिता का देहांत हो गया। उनके देहांत का जै देव जी के मन पर बहुत असर हुआ। दुःख को सहन न करते हुए वैराग भरे गीत रच-रच कर गाते रहते। उनके गीतों को सुन कर लोग भी वैराग में आ जाया करते थे।

जै देव विद्या पढ़ते गए और घर की पूंजी या रिश्तेदारों की सहायता मिलती गई। विद्या से मन उचाट न किया। इस तरह उनके दिन बीतते रहे। वह पाठशाला जाते रहे।

जै देव जी का पहला चमत्कार

सूझवान कहते हैं, चमत्कारी बालकों या भक्तों की भक्ति की निशानियां पहले ही प्रगट हो जाती हैं। उनके जीवन में कोई न कोई ऐसी घटना घटित होती है कि उनके महापुरुष होने का लोगों को आभास हो जाता है। लोग श्रद्धा रखने लग पड़ते हैं।

ऐसी ही अद्भुत चमत्कारी घटना जै देव जी के जीवन में भी घटित हुई, जब आप अभी साधारण बालकों की तरह थे। जवान हो चुके थे पर दुनिया के छल-बल का ज्ञान नहीं था। वह हरेक की बात को सच मान जाते थे तथा आगे कोई किन्तु नहीं करते थे।

भक्त जै देव जी के नगर केंदल का एक निरंजन ब्राह्मण था। वह बहुत मक्कार तथा झूठा आदमी था। हरेक के साथ धोखा करता रहता था। उसने देखा जै देव साधारण बालक है। वह जै देव जी के निकट निकट होता गया। एक दिन बुरा-सा मुंह बना कर कहने लगा-'जै देव ! देखो न तुम्हारे माता-पिता कितने अच्छे थे-भलेमानुष, नेक तथा सत्य बोलने वाले थे। वह जिससे वचन करते, उसे ज़रूर पूरा करते। उन्होंने मुझसे रुपये लिये थे, पर वापिस देने से पहले ही परलोक गमन कर गए। उनके परलोक गमन का तो दुख है, पर अब मैंने सोचा है कि कागज पर हस्ताक्षर कर दो तो मकान दे कर पिता का कर्जा उतर जाए। पिता का कर्जा उतारना एक लायक पुत्र के लिए ठीक है।

निरंजन ने ऐसे मीठे वचन बोले कि जै देव उसकी चालाकी न समझ सका। उसने हस्ताक्षर करने के लिए हां कर दी। उसकी हां देखकर उसी समय निरंजन ने कागज निकाला जो उसने पहले ही छिपा कर रखा हुआ था। वह कागज निकाल कर उसके आगे रख दिया। भक्त जी ने हस्ताक्षर कर दिए।

निरंजन हस्ताक्षर किए देख कर खुश हो गया। कागज पकड़ कर एक हाथ से जै देव को शाबाश दे रहा था कि उसकी लड़की दौड़ती हुई आई तथा उसने रोते हुए कहा–'पिता जी ! घर को आग लग गई, जल गया।'

निरंजन घर की ओर दौड़ा। घर के पास गया तो अग्नि की लपटों से बांस और त्रिण, लकड़ी का घर जल रहा था। आग प्रचंड थी। वह आग बुझाने और घर के सामान को बचाने के लिए आगे बढ़ा तो जै देव से लिखवाया कागज आग में गिर पड़ा तथा जल कर राख हो गया। उसे पता न लगा।

सारा गांव इकट्ठा हो गया। निरंजन का घर जल रहा था, आग बुझाने से बुझती नहीं थी। लोग देख–देख कर हैरान खड़े थे कि जै देव जी वहां पहुंच गए। उनके वहां आते ही आग एक दम ठण्डी हो गई, धुआं भी न रहा। यह चमत्कार देख कर लोग बड़े हैरान हुए।

निरंजन को ज्ञान हो गया कि उसके पाप कर्म का फल था जो उसने झूठ कहकर जै देव ब्राह्मण का पक्का घर लेना चाहा। उसकी आत्मा ने उसको कोसा तथा वह जै देव जी के चरणों में गिर पड़ा। रो–रो कर कहने लगा, 'भक्त... भगवान भक्त मुझे क्षमा करें ! मैंने भूल की। मेरे पाप का फल मुझे बख्शो।'

निरंजन इस प्रकार रोता बिलखता रहा। जै देव जी ने उसको धैर्य दिया। प्यार से केवल इतना कहा–'भगवान जानता है।'

सारे नगर वासियों को निरंजन के कुकर्म का पता लग गया। वह जै देव जी पर श्रद्धा रखने लगे एवं सेवा करने लगे। निरंजन भी उनका सेवक बन गया।

जै देव राजकवि

सदियों से बंगाल रंगीनियों का देश है। राग, नाच, कविता और

भक्ति से छलकते दिल बंगाल में बसते हैं। वहां रागी, नृतकों और कवियों का बहुत आदर-सत्कार होता है। राजा भी रचना करते आए हैं। जै देव चढ़ती जवानी में था जब वह सूझवान कवि और गीतकार बन गया। उसके चेहरे पर लाली चमकती थी। सुन्दर तथा सुडौल शरीर था, उस पर उन्होंने भगवा धोती बांध ली। भगवा धोती से वह एक वैरागी साधू लगने लगे। अपनी रचित कविता को गाते फिरने लगे। जिधर वह जाते उधर ही लोगों की भीड़ जाती।

उस समय बंगाल का राजा लक्ष्मण सैन था। उसने जै देव की बहुत उपमा सुनी। उसने हुक्म किया वह (जै देव) जहां-कहीं भी हो उसे लाया जाए। लक्ष्मण सैन के आदमी जै देव को ढूंढ कर उसके दरबार में ले गए। राजा ने जै देव को राज कवि बना लिया तथा उसका बहुत आदर किया। बेशक उसके पास पहले भी विद्वान थे, यह भी उनके साथ रहने लगे पर साधू भेष का त्याग नहीं किया। वह उसी भेष में सुख से रहते रहे। उनकी शान बढ़ गई, कीमती वस्त्र पहनने को मिल गए, पर साधू वृति में परिवर्तन न आया। राज दरबार में रहते हुए आप ने संस्कृत साहित्य में बहुत सारी वृद्धि की और गीत रचे।

तीर्थ यात्रा पर भगवान के दर्शन

राज दरबार में रहते हुए जै देव वैरागी हो गए। वह पक्षियों की तरह खुले आकाश में उड़ना चाहते थे। राजा के दरबार में कैदियों की तरह रहना उनको अच्छा न लगा। एक दिन चुपचाप ही शहर से बाहर चले गए। ऐसे गए कि फिर न मुड़े। कहां जाना था ? यह कुछ पता नहीं। हां वह चलते ही गए। रात भी, दिन भी हृदय पर श्री कृष्ण और राधा का चित्र, आंखों में वही मूर्तियां रहीं। ज़ुबान पर उनका ही नाम था। पशु, पक्षी तथा मनुष्य सारी वनस्पति राधा कृष्ण की स्तुति में ही व्यस्त

प्रतीत होती थी। जै देव जी की आत्मा ने आवाज़ दी, चलो जगन्नाथपुरी चलो। वहां तुम्हारा इंतजार है वहां आकाश है। रात को निर्मल आकाश के नीचे हंसते तारों को देखकर कुदरत के गुण गाते। एक दिन वह गीत गाते हुए गर्मी में चलते गए। रास्ता ऊबड़-खाबड़ तथा पहाड़ी था, पानी दूर था। प्यास लगी कोई परवाह न की। वह चलते ही गए। पर्वतों की ऊंची चढ़ाई और गर्मी ने उनको बौखला दिया। वह मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़े। उसी समय भगवान प्रगट हुए, श्री कृष्ण मुरारी। घट-घट की जानने वाले सर्वव्यापी गोपाल और दयाल उसी समय भक्त के पास आए। भगवान ने बालक का रूप धारण कर भक्त को दूध की गड़वी पिलाई। मूर्छित पड़े जै देव जी के मुंह में दूध गया तो उनको होश आई। बचा हुआ दूध भी गड़वी को मुंह लगा कर एक ही घूंट में पी गए। मौत से बचाने वाले बालक की तरफ देखा। वह आठ-दस साल का ग्वालों का बालक प्रतीत होता था। उसके कपड़े तो फटे-पुराने थे, पर मुख चांद जैसा था। जै देव जी को जब अच्छी तरह होश आ गई तो उन्होंने बालक से पूछा, 'बेटा ! तुम किसके पुत्र हो ? कहां से आए हो ?'

'जी ! उधर देखिए वह झोंपड़ियां दिखती हैं वहां का रहने वाला हूं।' बालक ने उत्तर दिया तथा साथ ही उंगली से ईशारा किया। जै देव जी उधर देखने लग पड़े। उनको कोई झोंपड़ी दिखाई न दी। वह फिर से बालक को पूछने ही लगे थे कि कौन-सी झोंपड़ियों की ओर ईशारा करते हो ? उनको बालक नज़र न आया। वह अदृश्य हो गया। भगवान स्वयं आया था। अपने सच्चे भक्त को दूध पिला कर चले गए। वह दुखियों तथा प्रेमियों का सहारा है। जै देव पुकारने लगे।

'ओ प्रभु ! हे गोकुल रत्न दयालु ! आए और दर्शन देकर चले गए ?' उधर झोंपड़ियों का ईशारा करके इधर से चले गए। 'वाह

मेरे कौतुकी प्रीतम मोहन मुरली मनोहर क्या गुण गाऊं तुम्हारे !' प्रभु ! श्री कृष्ण जी को याद करते हुए भक्त आगे जाने की जगह वहीं बैठ कर भगवान के यश में गीत गाने लग पड़ा। पक्षी तथा कुदरत उसके प्रेममयी गीत सुनने लगे।

भक्त जै देव की पद्मावती से शादी

भक्त जै देव जी पुरी पहुंच गए। उन्होंने किसी मंदिर में डेरा न लगाया बल्कि बाहर मार्ग पर बैठ कर प्रभु के गीत भजन गाने लगे। उनका कंठ सुरीला था। हृदय में प्यार तथा आंखों के आगे भगवान की तस्वीर थी। जो भी उनका भजन सुनता वहीं मुग्ध हो जाता तथा बैठ कर साथ ही दर्शन करता और भजन सुनता। जै देव जी सुन्दर नवयुवक थे। चेहरे पर भक्ति की रंगत थी।

प्रभु की ऐसी कृपा हुई कि उनको हर रोज दोनों समय कोई न कोई भोजन खाने को मिल जाता। माताएं दूध तथा फल दे जातीं तथा उनकी श्रद्धा बढ़ती गई। लोग आदर करते गए।

एक दिन अद्भुत ही खेल प्रभु ने रच दिया। पुरी के रहने वाले सुदेव ब्राह्मण को जै देव जी के दर्शनों की ओर भेजा। वह एक माह बाद पुरी में आया था तथा उसने सुना कि एक ब्राह्मण पुत्र अति सुन्दर बंगाल में से आया है तथा भजन गाता है। वह भी सुनने लग पड़ा। ऐसा आनंद आया कि वह बैठा रहा। जब उठा तो घर आया। घर से भोजन तैयार करवा कर लाया तथा खिलाया। वचन विलास करके कहा-'आप तो उच्च कुल के रत्न हो। परमात्मा ने कृपा करके अपनी भक्ति की ओर लगा लिया।

'ऐसा क्या है।' जै देव जी ने उत्तर दिया। वह बहुत कम बोला करते थे। मतलब का वचन करते। भगवान का नाम उसके तन-मन में एकसार हो गया।

सुदेव दो तीन दिन दोनों समय जै देव जी को भोजन खिलाता रहा तथा दर्शन करके चला जाता। वह घर पहुंचा। उसे नवयौवन कन्या पद्मावती दिखाई दी, जो विवाह के योग्य थी। उस रात वह सोचता रहा कि कन्या के हाथ पीले करने हैं। विवाह के योग्य है, क्यों न ऐसे भक्त से विवाह रचा दूं ? सुन्दर युवा, प्रभु भक्त ! और क्या चाहिए ? इस विचार ने रात भर उसे सोने न दिया। मन में यही विचार आता रहा, 'विवाह कर दे जै देव जी के साथ। सुन्दर नवयुवक है। भक्त है... इससे अच्छा वर और कौन हो सकता है। सुदेव वक्त न गंवाना।'

उसका मन जै देव के साथ जुड़ गया। वह सुबह ही उठकर गया। जै देव जी अपने आसन पर बैठे हुए भजन गा रहे थे। उनको जाकर कहने लगे, 'भक्त जी ! एक विनती है।'

जै देव ने उसकी तरफ देखकर पूछा-'जी !'

'मेरी विनती है कि मैं एक संकल्प कर चुका हूं। मेरी कन्या पद्मावती सुन्दर एवं सुशील है। वह अब विवाह के योग्य हो चुकी है। धर्मशास्त्र का कहना है कि यदि कन्या विवाह के योग्य हो जाए तो उसकी शादी करनी ठीक है।

'आप शादी कर दीजिए, आप तो समझदार हैं। ऐसी बातों का तो हमें ज्ञान नहीं आप लोग अच्छी तरह जानते हो।' यह भक्त जै देव जी का उत्तर था।

'पर मैं संकल्प कर चुका हूं कि मेरी कन्या के वर आप ही हो सकते हो। मैंने कन्या की शादी आप से करनी है, वह आपके चरणों की दासी बने।'

सुदेव के यह वचन सुन कर जै देव जी हैरान हुए। उन्होंने सुदेव की तरफ देखा। 'हे भक्त ! मैं एक साधू बन गया हूं। घर नहीं, घाट नहीं। मैं शादी करके आप की कन्या को कैसे सुखी रख सकता

हूं ? ऐसा सोचना ही ठीक नहीं ।'

'पर मैं संकल्प कर चुका हूं। एक ब्राह्मण का संकल्प भी टल नहीं सकता। आपको मेरी विनती स्वीकार करनी ही पड़ेगी ।' यह कह कर सुदेव घर को चला गया।

अगले दिन सुदेव वापिस आया। उसके साथ उसकी कन्या पद्मावती थी। उस जैसी सुन्दर कन्या सारी पुरी नगरी में नहीं थी। भोजन खिला कर सुदेव ने फिर बात छेड़ दी तथा कन्या को कहा– 'पुत्री ! इनके चरणों पर प्रणाम करो ।' कन्या ने ऐसा ही किया। सुदेव ने जबरदस्ती पद्मावती की शादी जै देव के साथ कर दी। प्रभु की इस इच्छा पर जै देव जी स्वयं हैरान थे। 'प्रभु की कैसी लीला है ।' कह कर जै देव जी भजन गाने लग पड़े।

जै देव जी का अपने गांव मुड़ना

भक्त जै देव जी भगवान की लीला पर हैरान थे। पहले घर से भेजा तीर्थ की ओर तथा फिर तीर्थ पर गृहस्थी बना दिया। सुन्दर पद्मावती बख्श दी। जिस ब्राह्मण कन्या से देवता, पुजारी तथा धनवान विवाह करने की इच्छा रखते थे, वह जै देव जी को बिना कुछ खर्च किए दान हो गई। सुदेव बड़ा प्रसन्न हुआ। वह भक्त जी को घर ले गया और कुछ दिनों पश्चात भक्त जी के मन में आया कि वह अपने नगर जा बसें।

भक्त जी चल पड़े। मंजिल–मंजिल तय करते हुए अपने गांव पहुंचे। उनके गांव जाने के बाद गांव वासियों को उनके दर्शन हुए तो वह प्रसन्न हुए। हैरानी इस बात की हुई कि पद्मावती मिल गई। उनके पिता के घर में फिर चहल–पहल हो गई।

भक्त जी का घर निरंजन ब्राह्मण के पास था। उसने उसी समय कहा कि मैं खाली कर देता हूं। आप रहो मैं झोंपड़ी डाल कर रहूंगा।

आप तो ब्राह्मण रूप हो ।

'नहीं पंडित जी ! ' भक्त जी ने निरंजन को कहा, 'इतने बड़े मकान में क्या मैं अकेला रहूंगा ? एक तरफ आप रहो और एक तरफ मैं रहता हूं। रौनक बनी रहे ।'

निरंजन पहले वाला निरंजन नहीं रहा था । उसका मन साफ हो चुका था। वह चोरी, धोखा, फरेब छोड़ कर भगवान का भजन करता था । किसी को बुरा नहीं कहता था । गांव वाले भी उसको अच्छा समझते थे । वह कई बार कहा करता–'मेरे मन में लालच आया । पक्का मकान लेने के लिए भक्त जै देव जी के आगे मैंने झूठ बोला। भगवान सुन रहा था । उसने उसी समय मेरे घर को आग लगा दी और घर जला दिया। नेक पुरुष के साथ कभी धोखा न करो, भगवान सजा देता है, नुक्सान होता है ।'

जै देव जी गांव में रहने लगे। उनकी उपजीविका की चिन्ता भगवान को थी। पद्मावती अपने पति को देवता समझ कर उनकी सेवा करने लगी तथा जो मिलता वह खुशी से खा लेती । वह भी प्रभु का नाम सिमरन करने लगी । जो भी कोई दर्शन करने आता, वही कुछ न कुछ भक्त जी को भेंट कर जाता । भक्त जी तो गीत गोबिंद गाते रहते ।

गीत गोबिंद की रचना

भक्त जै देव जी संस्कृत के विद्वान थे । वेद मंत्र तथा उपनिषदों के मंत्र, महाभारत और महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण के श्लोक इतने याद थे कि चाहे वह महीना गाते रहते खत्म न होते। पर उन्होंने स्वयं संस्कृत में गीत रचे , जो संस्कृत साहित्य की महान रचना है।

भक्त जै देव जी का ग्रंथ 'गीत गोबिंद' कृष्ण भक्ति का महान ग्रंथ है तथा इसकी रचना एक महीना या एक साल में नहीं हुई अपितु

कई सालों में हुई है। जै देव जी अपने नगर में विराज कर गीत गोबिंद की रचना करते रहे। पर रचना का आरंभ जगन्नाथ पुरी में ही हुआ था। उसके बारे में कहा जाता है कि एक दिन भक्त जी का भगवान श्री कृष्ण जी की याद में मन लगा हुआ था, मन तो वृंदावन की कुन्ज गलियों में घूम रहा था। अचानक उनकी आंखों के आगे एक झांकी स्वयंमेव आ गई। एक अनोखी झांकी जिसको भक्त जी कभी न भूले।

भक्त जी नदी किनारे एक बड़े वृक्ष के साथ सट कर खड़े थे। उनकी आंखों के सामने श्री कृष्ण जी दूर खड़े बांसुरी बजा रहे थे। दूर से राधा अपनी सखियों के साथ नाचती हुई आई। वह गीत गाती तथा नाचती श्री कृष्ण जी को मिली तो उस कौतुक को देखते ही जै देव जी के मुख से एक सलोक अक्समात ही निकल गया। वह सलोक 'गीत गोबिंद' का आरम्भिक चरण बना तथा रचना शुरू हुई।

भक्त जै देव जी का कीर्तन सुनने तथा दर्शन करने आए लोग हर रोज़ कुछ भेंट कर जाते थे। उससे भक्त जी के घर का निर्वाह चलता था। अन्न की कमी नहीं थी। आपकी धर्मपत्नी पद्मावती भी बहुत नेक तथा मेहनती स्वभाव की थी। वह पति सेवा करती हुई उसी में सुख संतोष से रहती। जो कुछ भी उसको खाने-पीने के लिए मिलता उसी में खुश रहती।

भक्त जै देव जी सुबह ही बाहर चले जाते। उनके नगर के पास ही निर्मल जल की नदी बहती थी। उसके किनारे बड़े ऊंचे वृक्ष थे। उनके नीचे बैठ कर जै देव जी गीत गोबिंद का उच्चारण करते रहते। भोजन के समय पद्मावती भोजन लेकर आ जाती तथा भोजन खिला कर अपने घर वापिस आ जाती।

एक दिन पद्मावती भोजन लेकर आई। आप जब श्री कृष्ण जी की स्तुति में गीत उच्चारण कर रहे थे तो एक छन्द की रचना की।

तीन चरण पर चौथा न सूझा। उधर से पद्मावती ने आकर कहा-

'स्वामी जी भोजन करने के लिए स्नान कर आओ।'

'पद्मो ! भक्त जी बोले, छन्द की रचना की है पर चौथा चरण पूरा नहीं होता। उसको पूरा करके खाता हूं।'

पद्मावती-हे स्वामी जी ! आप स्नान करो। भोजन कीजिए, फिर वृति लगा कर बैठोगे तो चरण ज़रूर पूरा हो जाएगा। भगवान की कुछ ऐसी इच्छा होगी, जिस कारण नहीं सूझता।

भक्त जै देव जी-अच्छा पद्मे ! आपका कहना भी मान लेते हैं। मेरे भगवान की शायद ऐसी इच्छा हो।

वह आसन से उठ बैठे तथा नदी की तरफ चले गए। पर उस समय पद्मावती बड़ी हैरान हुई, जब जै देव जी रास्ते से फिर मुड़ आए और कहते हैं-'पद्मो ! लाओ गीत-गोबिंद ! चरण पूरा करें।'

'आप रास्ते से मुड़ आए !' ग्रंथ पकड़ाते हुए पद्मावती ने कहा।

बिना उत्तर दिये चरण लिखने लग पड़े तथा पूरा कर दिया।

जब चरण पूरा हो गया तो उन्होंने पद्मावती की तरफ देख कर कहा-'हे पद्मे ! लाओ पहले भोजन कर लें, फिर स्नान कर लेंगे। आज कुछ ऐसी इच्छा है।

पद्मावती ने पत्तल पर भोजन परोस दिया। जै देव जी ने बड़े प्रेम से भोजन खाया। हाथ धोकर ज़रा दूर हुए तो पद्मावती उन जूठे पत्तलों पर भोजन करने लगी। वह पति के जूठे पत्तल पर भोजन करती थी। उसने अभी निवाला मुंह में नहीं डाला था कि जै देव जी आए तथा देख कर कहने लगे-

'हे पद्मो ! क्या बात है आज भोजन पहले कर लिया ? मेरा इंतजार नहीं किया, मैं स्नान करके आ रहा हूं। आज कुछ देर हो गई। भगवान की यही इच्छा है।'

पद्मावती ने अभी निवाला होंठों को नहीं लगाया था। उसके हाथ

से निवाला गिर पड़ा तथा हैरानी से देखती हुई कांपते होंठों से बोली- 'यदि आप अभी नहीं आए थे तो आपका रूप धारण करके कौन आया था, आपके छन्द का चौथा चरण पूरा हुआ, भोजन खाया। कहीं सीता की तरह मेरे साथ धोखा तो नहीं होने लगा था ?'

इसके बाद पद्मावती ने सारी वार्ता सुनाई। भक्त जी ने ग्रंथ का लिखा हिस्सा लेकर उठाया। जब देखा तो छन्द बिल्कुल पूर्ण हुआ-

सथल कमल गंजनं मम रिदय रंजनं जनि तर तिरंग पर भागमू।
भन सम्रिन वानि करवानि चरन द्वय सरस लस दलकत करागमू।
समर गरल खंडनं सम शिरसि खंडनं देह मो पट पदव मुराटरमू।

सारी वार्ता सुन कर तथा छन्द पूरा हुआ देख कर भक्त जै देव जी जान गए कि भगवान श्री कृष्ण जी ने उनकी सहायता की है। पद्मा से भोजन ग्रहण किया है। उन्होंने भगवान का शीत प्रसाद लिया और कपाट खुल गए। प्रसन्न होकर उसी दिन घर आ गए।

'गीत-गोबिंद' पुरी के मंदिर में भेजना

भगवान श्री कृष्ण जी के दर्शन देने के बाद शीघ्र ही 'गीत-गोबिंद' का ग्रंथ सम्पूर्ण हो गया। जब ग्रंथ सम्पूर्ण हुआ तो उसकी एक ओर प्रतिलिपि (नकल) तैयार की। सुन्दर कपड़े में बांध कर जै देव जी पद्मावती सहित पुरी के मंदिर में पहुंचे तथा एक गीत गाया। सारे गीत गा कर वह ग्रंथ भगवान के चरणों में रख दिया। उनके गीत लोगों को इतने मधुर लगे कि हर कोई याद करके गाने लगा। भक्त जै देव जी के नाम की बहुत चर्चा हुई।

जगन्नाथ पुरी का राजा ब्राह्मण था। वह स्वयं को कवि तथा महां विद्वान मानता था। उसने जब 'गीत-गोबिंद' की शोभा सुनी तो उसके हृदय में ईर्ष्या की आग जल उठी। उसने मन ही मन फैसला कर लिया कि वह 'गीत-गोबिंद' जैसा ग्रंथ लिखेगा तथा अपने ग्रंथ का

प्रचार करवाएगा, क्योंकि उसके पास माया बहुत थी। माया के सहारे पर मूर्ख भी पंडित समझा जाता है। जगत में हर जगह माया का ही प्रताप है। 'कउन बड़ा माया वडिआई' वाली बात है जगत पर।

उस राजा को माया का अभिमान हो गया तथा 'गीत-गोबिंद' ग्रंथ तैयार किया। ग्रन्थ तैयार होने पर ब्राह्मणों को बुला कर कहने लगा-'देखो इस गीत ग्रन्थ की रचना मैंने की है। इसके गीतों का प्रचार करो। बहुत सारा धन दान करूंगा।' पर ब्राह्मण यह पाप नहीं करना चाहते थे कि वास्तविक गीत ग्रंथ की जगह नकली का प्रचार करें। उन्होंने राजा को उत्तर दिया-'हे राजन ! यह नहीं हो सकता कि हम स्वयं ही आपके ग्रन्थ का प्रचार करें। यह तो हो सकता है कि दोनों ग्रंथ श्री कृष्ण जी की हजूरी में रख देते हैं। वह जिस ग्रंथ को स्वीकार करें उसी का प्रचार होगा। पंडितों की इस सलाह को राजा भी मान गया। चलो इसी तरह ही सही। सुबह ही दोनों ग्रंथ मंदिर में चढ़ाए जाएं, अपने आप ही पता लग जायेगा कि किस ग्रंथ को भगवान चाहता है।

सारे शहर में यह खबर जंगल की आग की तरह फैल गई कि राजा और जै देव जी के गीत गोबिंद ग्रंथों का मुकाबला होगा। लोग यह सुन कर भगवान का चमत्कार देखने के लिए बढ़-चढ़ कर पहुंचे। राजा वजीरों सहित अहंकार में मस्त हो गया। उसे यह अभिमान था कि उसका गीत गोबिंद ग्रंथ अच्छा है। दोनों ग्रंथ श्री पुरुषोत्तम जी की मूर्ति के आगे रख दिए गए।

सारे लोग मंदिर से बाहर आ गए। पुजारी पंडित ने मूर्ति के आगे प्रार्थना की-'हे भगवान ! यह दो ग्रंथ आपके चरणों में रखे जाते हैं। इन में से जिस ग्रन्थ को आप स्वीकार करते हो उसको पास रख लो तथा दूसरे को मंदिर में से बाहर निकाल दें। हे प्रभु ! यह फैसला आप ही कर सकते हो।' ऐसी प्रार्थना करके मुख्य पुजारी

भी मंदिर से बाहर आ गया। अंदर सिर्फ ग्रंथ तथा भगवान की मूर्ति रही। मंदिर के पुजारी, राजा तथा शहर के साधारण लोग बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे कि भगवान जी किसके हक में फैसला करते हैं तथा किस को मान देते हैं। भगवान की लीला भगवान ही जाने, मनुष्य क्या जान सकता है ? बाहर खड़े लोगों को ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे मंदिर में कोई पुरुष घूम रहा हो तथा चीज़ों का उल्ट-पुल्ट कर रहा था। उस हिलजुल के कुछ समय बाद ही एक ग्रंथ पटाक् करके मंदिर के द्वार से बाहर फर्श पर आ गया। उसके पन्ने बिखर गए। एक ग्रंथ के बाहर आने से लोगों ने खुशी में भगवान पुरुषोत्तम की जै जै कार की। मुख्य पुजारी ने आगे होकर बाहर गिरा हुआ ग्रंथ उठा कर देखा। उसने पुकारा, भगवान के भक्तो ! सुन लो ! भगवान ने राजा के ग्रंथ गीत गोबिंद को बाहर फैंक दिया है तथा जै देव जी का ग्रंथ स्वीकार है। राजा के ग्रंथ को स्वीकार नहीं किया। अब जै देव जी के ग्रंथ के गीत गाए जाएंगे। लोग खुश हो गए पर राजा बड़ा शर्मिंदा हुआ।

उसे धरती स्थान नहीं देती थी, लोग वहीं उसे शर्मिंदा करने लग पड़े। उसने अपना ग्रंथ उठा लिया। वजीरों, पंडितों तथा अन्य जानने वालों से आंख बचा कर समुन्द्र की ओर चल पड़ा। उसने फैसला किया कि वह प्राण त्याग देगा। मरने का विचार कर के वह समुन्द्र के किनारे पहुंचा। समुन्द्र में छलांग लगाने लगा तो भगवान की ओर से वचन हुआ-'हे राजन ! आत्महत्या करके दूसरा पाप न करो, पहला पाप तुमने ईर्ष्या करके किया है। तुम्हारे ग्रंथ को इसीलिए स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि लिखते समय तुम्हारी आत्मा में श्रद्धा नहीं थी। ईर्ष्या की आग से जलते मन के साथ आप ने इसकी रचना की है। अहंकार को त्याग कर, मूर्खता छोड़ दो। जाओ कुछ सलोक जै देव जी के ग्रंथ में शामिल कर दो, स्वीकार हो जाएंगे। तुम्हारा

नाम अमर हो जाएगा। यह समुचा ग्रंथ समुन्द्र को भेट कर दो।' यह वचन सुन कर राजा के मन में कुछ शांति आई। उसने अपना ग्रंथ समुन्द्र में फैंक दिया तथा समुन्द्र के किनारे से भाग कर सीधा मंदिर में आ गया। मंदिर की मूर्ति के आगे डण्डवत हो कर भगवान से क्षमा मांगी। आगे से ईर्ष्या न करने की सौगन्ध उठाई। साथ ही यह प्रण किया कि जै देव जी के ग्रंथ गीत-गोबिंद में से वह यह गीत ज़रूर मंदिर में आकर पढ़ा करेगा। राजा इसी तरह ही करने लगा। इस बात ने जै देव जी की शोभा और बढ़ा दी। राजा ने जै देव जी को ढेर सारा धन दिया।

भक्त जी का लुटना

जब जगन्नाथ पुरी से जै देव जी चले तो राजा ने उनको बहुत सारा धन दिया तथा बड़े आदर से विदा किया। लोग भी दूर तक छोड़ने आए तथा प्रभु के गुण गाते रहे।

भक्त जी पद्मावती के साथ जब जंगल में से गुजर रहे थे तो उनको रास्ते में खतरनाक डाकू मिल गए। उन डाकुओं ने चाहे यह देख लिया कि एक ब्राह्मण आ रहा है, पर पद्मावती के सौंदर्य तथा रुपयों की पोटली ने डाकुओं का मन बेईमान कर दिया। उनमें से एक ने कहा, 'हे पंडित ! जो कुछ तुम्हारे पास है, वह हमारे हवाले कर दो। अगर टाल-मटोल की तो तुम्हारी खैर नहीं।'

मैं एक ब्राह्मण हूं। भगवान पुरुषोत्तम के दर्शनों से आ रहा हूं। मेरे पास यह मोहरें तथा रुपये हैं ले लो। यह धन शायद आपकी आवश्यकता पूरी कर देगा।

यह कह कर जै देव जी ने सारा धन धरती पर ढेर कर दिया, जब आगे चलने लगे तो डाकुओं ने पद्मावती को बांहों से पकड़ लिया और कहा, 'यह भी धन है यह नहीं जाएगी।' इस पर जै देव

जी ने मिन्नत की पर मूर्ख डाकुओं ने एक न सुनी तथा जै देव जी को उठा कर कुएं में फैंक दिया। दुष्ट लुटेरे पद्मावती को साथ लेकर भाग गए तथा दौलत भी ले गए। भगवान ने अनोखा ही कौतुक रचा दिया। बुरे पुरुष की दौलत ने भक्त तथा उसकी धर्म पत्नी को दुखों, कष्टों में डाल कर शायद परीक्षा लेनी चाही।

जैसे पूरन भक्त को कुएं में उसके पिता ने गिरवा दिया था, उसी तरह मूर्ख डाकुओं ने महान विद्वान तथा ब्रह्म स्वरूप भक्त को कुएं में फैंक दिया। कुआं सूना तथा कम पानी वाला था। भक्त न डूबा तथा 'राधे श्याम ! राधे श्याम !' ऊंचे-ऊंचे रटता रहा।

जब भक्त इस तरह अपने भगवान को याद कर रहा था, तब एक नेक राजा लक्ष्मण सैन उधर आ निकला। उसने आवाज़ सुनी तो रुक गया। उसके सेवकों ने भी सुना, आवाज़ आ रही थी, 'राधे श्याम ! हरे राम राधे श्याम ! वह भी लय में मस्ती के साथ गाने की।

'हे बोलने वाले ! यह बताओ तुम कौन हो ? राजा ने आगे होकर आवाज़ दी।

'मेरा नाम जै देव है। मैं पुरुष हूं। मुझे भगवान के आदमी कुएं में फैंक गए हैं। डरने वाली बात नहीं, मैं प्रभु का सुमिरन कर रहा हूं।' आगे से जवाब आया।

उसी समय राजा ने रस्सा गिरवाया तथा भक्त को कहा कि वह रस्से की गोल गांठ बना कर पैर फंसा ले तथा साथ ही रस्से को पकड़ ले। उसको ऊपर उठाया जाएगा। भक्त ने कहा 'डोल के बिना नहीं आ सकता। मेरी बाजुओं को चोटें लगी हैं।'

राजा ने डोल कुएं में फैंका तो भक्त जी को बाहर निकाला, जब बाहर आए तो उन्होंने सारी आपबीती सुनाई। राजा सुन कर बड़ा हैरान हुआ तथा भक्त की टूटी हुई बाजुएं देख कर उसको बहुत दुःख हुआ। वह सोचता रहा कि भक्त जी कैसे लिखेंगे ?

राजा लक्ष्मण सैन ने भक्त जै देव को साथ लिया तथा अपनी राजधानी ले आया। भक्त जी को पद्मावती की बहुत चिंता थी, पर विवेक यही था कि सब का रक्षक भगवान है। जो प्रभु की इच्छा है वही हो जाता है।

राजा ने पुण्य दान करने के साथ एक महा यज्ञ किया। उस यज्ञ का यह फल मिला कि जै देव जी की बाजुएं ठीक हो गईं। वह हरि यश करने लगा। दूसरी तरफ यज्ञ में आए साधू भेष में लुटेरे भी पकड़े गए तथा पद्मावती का पता लगा वह अपने गांव केंदल थी।

उसे भी राजा के पास बुला लिया गया। पद्मावती अपने पति को मिली।

भक्त जै देव जी का स्वर्गवास

राजा के पास भक्त जी लम्बे समय तक रहे तथा हरि नाम का कीर्तन किया करते। आपका बहुत यश होता था, कथा होती भक्त जी जो वचन करते थे, पूरे हो जाते, इस तरह काल बीत गया।

एक दिन जै देव जी ने राजा को कहा, 'हे महीष ! मेरी तीव्र इच्छा है कि अपने नगर की तरफ जाऊं। अब आज्ञा दीजिए। आप प्रभु का नाम सुमिरन करते रहो, किसी तरह की कमी नहीं आएगी। भगवान आपकी सहायता करेगा।

चाहे राजा की इच्छा नहीं थी कि भक्त जी उनसे कहीं दूर जाएं। वह चाहते थे कि उनके पास रहें। राजा के मन को शांति प्राप्त हो गई थी। फिर भी भक्त जी की इच्छा के विरुद्ध न जा सके। बहुत सारा धन देकर राजा ने आदर सहित विदा किया तथा साथ ही अपने आदमी भेजे जो रास्ते में रक्षा करते गए तथा भक्त को केंदल पहुंचा गए।

अपने नगर में आकर भक्त जी भगवान का यश करते रहे। गंगा उनके घर से दूर बहती थी, पर भक्त जी की ऐसी महिमा हुई कि एक बाढ़ से गंगा निकट आ गई।

केंदल नगर में रहते हुए भक्त जी आयु बहुत बढ़ जाने से वृद्ध हो गए। उनका अंतिम समय निकट आ गया तथा एक दिन भजन करते हुए ही ज्योति जोत समा गए। उनका ज्योति जोत समाना सुन कर पद्मावती भी परलोक गमन कर गई तथा दोनों की आत्माएं स्वर्गपुरी को चली गईं। जै जै कार होती रही।

उनकी समाधि उनके नगर में है, गंगा किनारे तथा गंगा का नाम 'जै दई गंगा' है। प्रत्येक माघी की संग्रांद को मेला लगता है तथा लोग स्नान करके मोक्ष प्राप्त करते जा रहे हैं। 'राधे श्याम' तथा गीत-गोबिंद की धुनें गाई जाती हैं। धन्य-धन्य भक्त जै देव जी !

भक्त त्रिलोचन जी

यह भक्त जी भी दक्षिण देश की तरफ से हुए हैं तथा भक्त नामदेव जी के गुरु-भाई वैश्य जाति से थे और ज्ञान देव जी (ज्ञानेश्वर) के शिष्य थे। उन से दीक्षा प्राप्त की थी। दक्षिण में आप की ख्याति भी भक्त नामदेव जी की तरह बहुत हुई तथा जीव कल्याण का उपदेश करते रहे। आपको बड़े जिज्ञासु भक्तों में माना गया। आपके बारे में भाई गुरदास जी इस प्रकार उच्चारण करते हैं-

दरशन देखन नामदेव भलके उठ त्रिलोचन आवै।
भगति करनि मिल दोई जने नामदेउ हरि चलत सुनावै।
मेरी भी करि बेनती दरशन देखां जे तिस भावै।
ठाकुर जी नों पुछिओसु दर्शन किवै त्रिलोचन पावै।
हस के ठाकुर बोलिआ नामदेउ नों कहि समझावै।
हथ न आवै भेट सो तुसि त्रिलोचन मैं मुहि लावै।

हउ अधीन हां भगत दे पहुंच न हंघा भगती दावै ।
होई विचोला आन मिलावै ।१२।

(भाई गुरदास)

भक्त नामदेव जी तथा त्रिलोचन जी का आपस में अटूट प्रेम था। भक्त नामदेव जी के पास केवल नाम की बरकत थी, पर त्रिलोचन जी के पास माया भी बेअंत थी। वह सिमरन करने के साथ आने-जाने वाले अतिथि भक्तों की सेवा भरपूर करते थे। भोजन खिलाते तथा वस्त्र लेकर दे दिया करते थे। एक दिन त्रिलोचन जी उठ कर नामदेव जी के दर्शन करने चले गए। दोनों भक्त मिले। दर्शन किये, वचन विलास हुए तो भक्त नामदेव जी ने भगवान का यश, उनकी कीर्ति तथा दर्शन देने के बारे में कुछ वार्ताएं सुना दीं। वार्ताओं को सुनकर भक्त त्रिलोचन जी के मन में आया कि वह भी दर्शन करे। उन्होंने भक्त नामदेव जी के आगे प्रार्थना की कि मुझे भी प्रभु के दर्शन हो जाएं तो जन्म सफल कर लूं।

त्रिलोचन जी के मुख से ऐसी प्रार्थना सुनकर भक्त नामदेव जी ने वचन किया-'उनको पूछ लेते हैं यदि प्रभु की इच्छा हुई तो जरूर दर्शन हो जाएंगे। दर्शन देने वाले पर निर्भर है।'

भाई गुरदास जी वचन करते हैं कि नामदेव जी ने विनती की। नामदेव जी की विनती सुन कर भगवान हंस कर बोले, पुण्य दान, भेंटे करने पर हम नहीं प्रसन्न होते। तुम्हारी भक्ति तथा प्रेम भावना पर प्रसन्न हैं। तुम्हारे कहने पर दर्शन दे देते हैं। जो भगवान का हुक्म था, नामदेव जी को कहा और वह त्रिलोचन को सुना दिया। 'श्रद्धा भावना रख कर पुण्य दान करो, एक दिन दर्शन जरूर हो जाएंगे।'

यह सुन कर त्रिलोचन जी प्रसन्न हो गए।

त्रिलोचन जी की कोई संतान नहीं थी, केवल पति-पत्नी दोनों ही प्राणी थे। संतों का आवागमन उनके घर असीम था। इसलिए उनको

तथा उनकी धर्म पत्नी को भगवान से बड़ा लगाव था और स्वयं काम करते रहते थे। उन्होंने सलाह की कि यदि कोई नौकर मिल जाए तो संतों की अच्छी सेवा हो जाया करेगी। बर्तन शीघ्र साफ न होने के कारण देरी पर कई बार संत भूखे ही चले जाते हैं, वे न जाए। नौकर रखने की सलाह पक्की हो गई।

एक दिन त्रिलोचन जी बाजार में जा रहे थे तो आप को एक गरीब-सा पुरुष मिला उसका चेहरा तंदरुस्त था, आंखों में चमक तथा तेज़ था, पर वस्त्र फटे हुए थे। उसको देख कर त्रिलोचन जी ने झिझक कर पूछा-'क्यों भाई ! तुम नौकरी करना चाहते हो ?'

उसने कहा-हां ! मैं नौकरी ढूंढता फिरता हूं, पर मेरी एक शर्त है, जिसे कोई नहीं मानता, इसलिए मुझे कोई नौकर नहीं रखता। यदि कोई मेरी शर्त माने तो मैं नौकरी करूंगा।

त्रिलोचन जी-'तुम्हारी शर्त क्या है बता सकते हो ?'

पुरुष-'जी मेरी शर्त मामूली है। मैं रोटी-कपड़े के बदले नौकरी करता हूं, नकद रुपया कोई नहीं मांगता, पर घर का कोई सदस्य आपस में आस-पड़ोस में मेरी रोटी के बदले किसी से कोई बात न करे। यह बिल्कुल ही न कहा जाए कि मैं रोटी ज्यादा खाता हूं या कम, काम जो भी कहेंगे करूंगा, मैं सब काम जानता हूं। रात-दिन जागता भी रहूं तो भी कोई बात नहीं, यदि आपको यह शर्त मंजूर है तो मैं आपके घर नौकर रहने को तैयार हूं। जिस दिन मेरे खाने को टोका गया, उस दिन मैं नौकरी छोड़ दूंगा। मैं तो एक ही बात चाहता हूं घर सलाह कर लें।

भक्त त्रिलोचन जी ने उसकी शर्त मंजूर कर ली, यह जो सेवक भक्त जी के साथ चला, वास्तव में 'हरि जी' (भगवान) स्वयं थे। नामदेव जी के कहने पर त्रिलोचन को दर्शन देने के लिए आए थे। भगवान ने अपना नाम त्रिलोचन को 'अन्तर्यामी' बताया। 'अन्तर्यामी'

घर आ गया, घर के सारे काम उसको सौंप दिये गए। पर काम सौंपने से पहले त्रिलोचन जी ने अपनी पत्नी को कहा, 'देखो जी ! इस सेवक को एक तो जुबान से बुरा शब्द नहीं कहना, दूसरा यह जितनी रोटी खाए उतनी देनी होगी, चाहे तीन-चार सेर अन्न क्यों न खाए, खाने से न टोकना, न ही किसी को बताना। जो बताएगा, जो देखेगा या टोकेगा, उसको दुःख देगा।

संत आते-जाते रहे और सेवक अन्तर्यामी आने-जाने वाले अतिथि की सेवा मन से श्रद्धापूर्वक करता रहा। संत बड़े प्रसन्न हो कर जाते, साथ ही कहते यह सेवक तो भक्त रूप है बड़ा गुरमुख है। सब इस तरह महिमा करते ही जाते, त्रिलोचन जी की प्रशंसा सारे शहर तथा बाहर होने लगी। इस तरह सेवा करते हुए एक साल बीत गया। एक साल के बाद की बात है, एक दिन त्रिलोचन जी की पत्नी एक पड़ोसन के पास जा बैठी। नारी जाति का आम स्वभाव है कि वह बातें बहुत करती हैं। कई भेद वाली बातों को गुप्त नहीं रख सकतीं। कई बार एक स्त्री को जबरदस्ती जिद्द करके तंग करेगी कि वह मन की बात बताए।

इस स्वभाव अनुसार त्रिलोचन की पत्नी पड़ोसन के पास बैठी थी तो पड़ोसन ने उसको पूछा, बहन ! सत्य बात बताना, तुम उदास क्यों रहती हो ? चाहे आयु अधिक हो गई है, फिर भी चेहरे पर लाली रहती थी। हंस-हंस कर बातें तथा वचन विलास करती थी। अब क्या हो गया ? तुम्हारा रंग भी हल्दी जैसा हो रहा है, दुःख क्या है ?

त्रिलोचन की भोली पत्नी को पता नहीं था कि संतों की सेवा करने वाला उनके घर स्वयं भगवान है। वह तो उसे आम मनुष्य समझती रही, अपनी तरफ से पर्दे से उस पुरुष (अन्तर्यामी) से छिप कर पड़ोसन से बातें करने लगी, पर वह अन्तर्यामी था वह तो घट घट की जानता था, त्रिलोचन जी की पत्नी पड़ोसन को कहने लगी, 'बहन जी क्या

बताऊं, एक तो दिनों-दिन बुढ़ापा आता जा रहा है, दूसरा संतों के रोज़ आने की संख्या बढ़ गई है। आटा पीस कर पकाना पड़ता है, मैं पीसती रहती हूं। तीसरा जो सेवक है न !' बात करती-करती वह रुक गई। उसकी पड़ोसन ने कहा, 'रुक क्यों गई ? बताओ न दिल का हाल, दुःख कम होता है, कहो।'

भक्त जी की पत्नी बोली-'बात यह है कि उन्होंने (त्रिलोचन जी) बहुत पक्का वादा किया है कि किसी से यह बात नहीं कहनी, पर मैं तुम्हें बहन समझ कर बताती हूं। तुम आगे किसी से बात न करना, वादा करती हो। बात यह है जो सेवक रखा है न, पता नहीं उसका पेट है या कि कुंआ, उसका पेट भरता ही नहीं, तीन-चार सेर अन्न तो उसके लिए चाहिए, मैं तो पकाती हुई उकता गई हूं। भक्त जी उसे कुछ नहीं कहते, मैं तो बहुत परेशान हूं, ऊपर से बुढ़ापा आ रहा है। वह घर उजाड़ते जा रहे हैं। यदि पास चार पैसे न रहे तो कल क्या खाएंगे ? जब नैन प्राण जवाब दे गए तो बिना पैसे के जानती हो कोई सूरत नहीं पूछता। रात-दिन सेवा करते रहते हैं।'

'यह तो भक्त जी (त्रिलोचन जी) भूल करते हैं, ऐसे सेवक को नहीं रखना चाहिए।' पड़ोसन ने कहा, उसे घर से निकाल दो। दूसरा सेवक रख लो। यह कौन-सी बात है।

त्रिलोचन जी की पत्नी इस तरह बातें करती तथा दुखड़े रोती हुई पड़ोसन के पास बहुत देर बैठी रही। दाल पकाने में अन्धेरा हो गया। उसका विचार था कि सेवक पका लेगा। पर सेवक अन्तर्यामी था। उसने सारी बातचीत दूर बैठे ही सुन ली। उसने जब अपनी निंदा सुनी तो उसी समय ही अपनी भूरी उठा कर घर से निकल गया। घर सूना छोड़ गया, दरवाज़े खुले थे। वह अदृश्य हो कर अपने असली रूप में आ गया। पड़ोसन के पास से उठ कर जब त्रिलोचन जी की पत्नी घर आई तो देखकर हैरान हुई कि घर के दरवाज़े खुले है, लेकिन

सेवक कहीं भीं नहीं था। वह घर से बाहर नहीं जाता था। उसने आवाज़ें दी, अंदर-बाहर देखा, पर कोई दिखाई न दिया। रात को त्रिलोचन जी आ गए। उन्होंने भी आ कर पूछा कि 'अन्तर्यामी' किधर गया ? पर उनको कोई स्पष्ट और संतोषप्रद उत्तर न मिला। त्रिलोचन जी समझ गए कि उनकी पत्नी से अवश्य भूल हो गई है। 'अन्तर्यामी' की निंदा कर दी होगी। जिस कारण वह चला गया।

कई दिन त्रिलोचन जी उस सेवक को ढूंढते रहे, न वह मिला तथा न मिलना था। एक दिन उनको सोते हुए वाणी हुई, 'त्रिलोचन ! तुम्हारा सेवक अन्तर्यामी सचमुच अन्तर्यामी भगवान था, तुम्हें दर्शन देने आया था। पर पहचान न की, तुम्हारी पत्नी ने बात बता दी। नामदेव जी ने सिफारिश की थी।'

यह सुन कर त्रिलोचन जी तड़प उठे, बहुत पछतावा हुआ। पत्नी को कहने लगे, 'तुम ने बहुत बुरा किया, सेवक बन कर स्वयं भगवान घर आया, पर दो सेर आटे के बदले घर से निकाल दिया। यह सब कुछ उसका है। उसकी माया उपयोग कर रहे हैं। यह तुम्हारा लालची और नारी मन प्रभु के भेद को न समझ सका, खोटे भाग्य।

त्रिलोचन जी की पत्नी यह सुन कर विलाप करने लगी कि भगवान सारी उम्र उनसे नाराज़ रहा। संतान न दी जो बुढ़ापे में सहायता करती। यदि अब नौकर रखा तो वह भी न रहा। मैं ही बुरी हूं। विधाता ने मेरे ही लेख (कर्म) बुरे लिखे हैं, मैं बदकिस्मत हूं, मेरा जीना किस काम का अगर प्रभु ही रूठ गया। भगवान, भगवान ! इस तरह ऊंची ऊंची विलाप करती हुई प्रभु को बुलाने लगी। 'मुझे संतान न दी-यदि संतान दी होती तो आज मुझे से भूल न होती-भगवान सब.....'

यह सुनकर भक्त त्रिलोचन जी ने अपनी पत्नी को समझाने का यत्न किया। वह भाव उनकी बाणी में से इस तरह मिलता है। आप फरमाते हैं :

नाराइण निंदसि काइ भूली गवारी ।। दुक्रितु सुक्रितु थारो करमु री ।।१।। रहाउ ।। संकरा मसतकि बसता सुरसरी इसनान रे ।।३।। कुल जन मधे मिल्यिो सारग पान रे ।। करम करि कलंकु मफीटसि री ।।१।। विस्व का दीपकु सवामी ता चे रे सुआर थी ।। पंखी राइ गरुड़ ता चे बाधवा ।। करम करि अरुण पिंगुला री ।।२।। अनिक पातिक हरता त्रिभवण नाथु री तीरथि तीरथि भ्रमता लहै न पारु री ।। करम करि कपालु मफीटसि री ।।३।। अंम्रित ससीअ धेन लछिमी कलप तर ।। सिखरि सुनागर नदी चे नाथं ।। करम करि खारु मफीटसि री ।।४।। दाधीले लंका गड़ु उपाड़ीले रावण बनु सलि बिसलि आणि तोखीले हरी ।। करम करि कछउटी मफीटसि री ।।५।। पूरबलो क्रित करमु न मिटै री ।। घर गेहणि ता चे मोहि जापीअले राम चे नामं ।। बदति त्रिलोचन राम जी ।।६।।

(पन्ना ६९५)

जिसका परमार्थ–हे भाग्यवान् ! ईश्वर पर दोष न लगाओ। दोष अपने कर्मों का है। हम जो अच्छे–बुरे कर्म करते हैं उनका फल वैसा ही पाते हैं। चन्द्रमा शिव के माथे में है। हर रोज़ गंगा में स्नान करता है। उसी चन्द्रमा की कुल में श्री कृष्ण जी हुए हैं। पर चन्द्रमा ने इन्द्र की सहायता की जो कामुक हो कर गौतम की अर्द्धांगिनी से पाप कर बैठा, जिस कारण उसे गौतम ने श्राप दे दिया। अभी तक चन्द्रमा का कलंक नहीं मिट सका। सूरज की तरफ देखो ! वह दुनिया को रोशनी देता है। दीये के समान है, अरूण रथवान है। अरूण का भाई गरूड़ है, गरूड़ को पक्षियों का राजा कहा जाता है। अरूण ने बींडे के पांव तोड़ कर लोहे की छड़ी पर मोड़ा था, जिसका परिणाम यह हुआ कि अरूण पिंगला हो गया। भगवान शिव जी की तरफ देखो, वह कई पापों को हरते हैं, लेकिन स्वयं तीर्थों पर भटकते फिरते

हैं। सरस्वती पर ब्रह्मा मोहित हो गए। शिव जी ने यह पाप समझ कर ब्रह्मा का सिर काट दिया, जिस कारण शिव को ब्रह्म हत्या का दोष लगा। ब्रह्मा का सिर उनके हाथ की हथेली से चिपक गया। इसको हाथ से उतारने के लिए शिव जी को कपाल मोचन तीर्थ पर जाना पड़ा। हे भाग्यवान ! सागर की तरफ देखो। कितना टेढ़ा तथा गहरा है, इसी सागर में से अमृत, चन्द्रमा, कमला, लक्ष्मी, कल्पवृक्ष, धन्वंतरि वैद्य आदि निकले, सब सागर में से मिलते हैं, यह उनका पति है। पर देख लो कर्मों का फल खारा है। इसलिए राम का सिमरन करते जाओ, जो भगवान करता है, ठीक करता है। अपने कर्मों का फल है कर्म की मेहनत जीव खाते हैं।

जै चंद को उपदेश

एक जै चंद नामक संन्यासी था, वह जाति का ब्राह्मण था। वह संन्यासी तो बन गया, पर उसकी मनोवृति ठीक न हुई। उसके पास लालच, अहंकार, ईर्ष्या तथा काम क्रोध की अग्नि ने घर किया हुआ था, इन बुराईयों का अन्त न किया। वह एक दिन त्रिलोचन जी से दान लेने के लिए गया। भक्त जी ने उसका सुधार करने के लिए उसको उपदेश देना शुरू किया। भक्त जी ने बाणी द्वारा फरमाया-

अंतरु मलि निरमलु नही कीना बाहरि भेख उदासी ।। हिरदै कमलु घटि ब्रहमु न चीन्हा काहे भइआ संनिआसी ।।१।। भरमे भूली रे जै चंदा ।। नही नही चीन्हिआ परमानंदा ।।१।। रहाउ ।। घरि घरि खाइआ पिंडु बधाइआ खिंथा मुंदा माइआ ।। भूमि मसाण की भसम लगाई गुर बिनु ततु न पाइआ ।।२।। काइ जपहु रे काइ तपहु रे काइ बिलोवहु पानी ।। लख चउरासीह जिन्हि उपाई सो सिमरहु निरबानी ।।३।। काइ कमंडलु कापड़ीआ रे अठसठि काइ फिराही ।। बदति त्रिलोचनु सुनु रे

प्रानी कन बिनु गाहु कि पाही ।।४।।

(पन्ना ५२५-२६)

उपरोक्त शब्द का भावार्थ इस तरह है-

हे संन्यासी पुरुष, आपने संन्यास तो धारण कर लिया है, पर अपनी आत्मा को निर्मल करने का यत्न नहीं किया। बाहरी भेष है। संन्यासी तो बने पर आत्मा मलीन है। इसको निर्मल करने का यत्न नहीं किया- भाव मोह-माया वासना को त्याग नहीं सके। हे जै चंद ! संन्यासी बन गए, पर कमल रूपी हृदय को ब्रह्म की रोशनी से चमकाया नहीं। भ्रम में लगे रहे तथा ब्रह्म को नहीं जाना। वचन नहीं किया। यह भला कहां का संन्यासीपन है कि घर-घर मांगते फिरे तथा शरीर को बढ़ा लिया, पेट पाल लिया। झोली में मुंदरें, सब का आसरा माया को जाना। धरती से उठा कर श्मशान की राख लगा ली, पर गुरु धारण करके ज्ञान का विचार न किया। ज्ञान ही तो जीवन है। आप का जप तप उस तरह है जैसे कोई सुबह पानी रिड़कता जाए तथा उसमें से कुछ न निकले। पानी रिड़कने से क्या निकलना है ? अच्छा तो है उस मालिक का नाम अजपा जपा करो, क्योंकि उसने चौरासी लाख योनियों को उत्पन्न किया है। वह जगत का मालिक है। बिना वाहिगुरु के नाम सिमरन के 68 तीर्थों पर करमण्डल पकड़ कर चलते फिरना भला किधर का साधू-पन है।

भक्त त्रिलोचन जी कहते हैं-'हे जै चंद संन्यासी ! तुम्हारा तीर्थों पर घूमना इस तरह है जैसे कोई पुरुष नाड़ को पकड़ कर दानों की आशा करता है। दाने तो फल में होते हैं। नाड़ में दाने नहीं होते, इसलिए आप का संन्यास असली संन्यास नहीं। यह तो झूठा आडम्बर है।'

भक्त जी का सच्चा उपदेश सुनकर जै चंद संन्यासी के कपाट खुल गए। वह भक्त जी के चरणों में गिर कर बोला, 'हे भक्त जी !

आप सत्य कह रहे हो। मैं दिल से संन्यासी नहीं बना हूं। अब मुझे ज्ञान हो गया। अपने चरणों में लगाओ और सत्य मार्ग दिखाएं।'

भक्त जी ने उस जै चंद संन्यासी को भक्ति मार्ग पर लगाया। वह दिल से संन्यासी बन कर त्यागी बना तथा नाम सिमरन से आत्मा को पवित्र करने लगा।

इस तरह भक्त त्रिलोचन जी भूले भटके जगत जीवों को उपदेश करते, हरि नाम का जाप जपाते हुए, इस संसार से लुप्त हो गए। उनके वचनों ने आज उनका नाम अमर रखा है। प्रभु की भक्ति करने वाले लोग सदा प्रभु चरणों में रहते तथा जगत के लिए प्रकाश का स्रोत होते हैं।

भक्त सूरदास जी

भक्त सूरदास जी विक्रमी सम्वत सोलहवीं सदी के अंत में एक महान कवि हुए हैं, जिन्होंने श्री कृष्ण जी की भक्ति में दीवाने हो कर महाकाव्य 'सूर-सागर' की रचना की। आप एक निर्धन पंडित के पुत्र थे तथा 1540 विक्रमी में आपका जन्म हुआ था। ऐसा अनुमान है कि आप आगरा के निकट हुए हैं। हिन्दी साहित्य में आपका श्रेष्ठ स्थान है।

आपका जन्म से असली नाम मदन मोहन था। जन्म से सूरदास अन्धे नहीं थे। जवानी तक आपकी आंखें ठीक रहीं तथा विद्या ग्रहण की। विद्या के साथ-साथ राग सीखा। प्रकृति की तरफ से आप का गला लचकदार बनाया गया था तथा तन से बहुत सुन्दर स्वरूप था। बचपन में ही विद्या आरम्भ कर दी तथा चेतन बुद्धि के कारण आप को सफलता मिली। चाहे घर की आर्थिक हालत कोई पेश नहीं जाने देती थी।

भारत में मुस्लिम राज आने के कारण फारसी पढ़ाई जाने लगी थी। संस्कृत तथा फारसी पढ़ना ही उच्च विद्या समझा जाता था।

मदन मोहन ने भी दोनों भाषाएं पढ़ीं तथा राग के सहारे नई कविताएं तथा गीत बना-बना कर पढ़ने लगा। उसके गले की लचक, रसीली आवाज़, जवानी, आंखों की चमक हर राह जाते को मोहित करने लगी, उनका आदर होने लगा तथा उन्हें प्यार किया जाने लगा। हे भक्त जनो ! जब किसी पुरुष के पास गुण तथा ज्ञान आ जाए, फिर उसको किसी बात की कमी नहीं रहती। गुण भी तो प्रभु की एक देन है, जिस पर प्रभु दयाल हुए उसी को ही ऐसी मेहर वरदान होती है। मदन मोहन कविताएं गाकर सुनाता तो लोग प्रेम से सुनते तथा उसको धन, वस्त्र तथा उत्तम वस्तुएं भी दे देते। इस तरह मदन मोहन की चर्चा तथा यश होने लगा, दिन बीतते गए। मदन मोहन कवि के नाम से पहचाना जाने लगा।

सूरदास बनना

मदन मोहन एक सुंदर नवयुवक था तथा हर रोज़ सरोवर के किनारे जा बैठता तथा गीत लिखता रहता। एक दिन ऐसा कौतुक हुआ, जिस ने उसके मन को मोह लिया। वह कौतुक यह था कि सरोवर के किनारे, एक सुन्दर नवयुवती, गुलाब की पत्तियों जैसा उसका तन था। पतली धोती बांध कर वह सरोवर पर कपड़े धो रही थी। उस समय मदन मोहन का ध्यान उसकी तरफ चला गया, जैसे कि आंखों का कर्म होता है, सुन्दर वस्तुओं को देखना। सुन्दरता हरेक को आकर्षित करती है।

उस सुन्दर युवती की सुन्दरता ने मदन मोहन को ऐसा आकर्षित किया कि वह कविता लिखने से रुक गया तथा मनोवृति एकाग्र करके उसकी तरफ देखने लगा। उसको इस तरह लगता था जैसे यमुना किनारे राधिका स्नान करके बैठी हुई वस्त्र साफ करने के बहाने मोहन मुरली वाले का इंतजार कर रही थी, वह देखता गया।

उस भाग्यशाली रूपवती ने भी मदन मोहन की तरफ देखा। कुछ लज्जा की, पर उठी तथा निकट हो कर कहने लगी–'आप मदन मोहन हैं ? हां, मैं मदन मोहन कवि हूं। गीत लिखता हूं, गीत गाता हूं। यहां गीत लिखने आया था तो आप की तरफ देखा।'

'क्यों ?'

'क्योंकि आपका रूप सुन्दर लगा। आप !'

'क्या मैं बहुत सुन्दर हूं ?'

'सुन्दर, बहुत सुन्दर–राधा प्रतीत हो रही हो। यमुना किनारे–मान सरोवर किनारे अप्सरा–जो जीवन दे। मेरी आंखों की तरफ देख सकोगे।'

'हां, देख रही हूं।

'क्या दिखाई दे रहा है।'

'मुझे अपना चेहरा आपकी आंखों में दिखाई दे रहा है। मदन मोहन ने कहा, कल भी आओगी ?'

'आ जाऊंगी ! जरूर आ जाऊंगी ! ऐसा कह कर वह पीछे मुड़ी तथा सरोवर में स्नान करके घर को चली गई।

अगले दिन वह फिर आई। मदन मोहन ने उसके सौंदर्य पर कविता लिखी, गाई तथा सुनाई। वह भी प्यार करने लग पड़ी। प्यार का सिलसिला इतना बढ़ा कि बदनामी का कारण बन गया।

मदन मोहन का पिता नाराज हुआ तो वह घर से निकल गया और बाहर मंदिर में आया, फिर भी मन संतुष्ट न हुआ। वह चलता–चलता मथुरा आ गया। वृंदावन में इस तरह घूमता रहा। मन में बेचैनी रही। वह नारी सौंदर्य को न भूला।

एक दिन वह मंदिर में गया। मंदिर में एक सुन्दर स्त्री जो शादीशुदा थी, उसके चेहरे की पद्मनी सूरत देख कर मदन मोहन का मन मोहित हो गया। वह मंदिर में से निकल कर घर को गई तो मदन मोहन

भी उसके पीछे-पीछे चल दिया। वह चलते-चलते उसके घर के आगे जा खड़ा हुआ। जब वह घर के अंदर चली गई तो मदन मोहन ने घर का दरवाज़ा खट-खटाया। उसका पति बाहर आया। उसने मदन मोहन को देखा और उसकी संतों वाली सूरत पर वह बोला, बताओ महात्मा जी !

मदन मोहन-'अभी जो आई है, वह आप की भी कुछ लगती होगी।'

पति-'हां, महात्मा जी ! हुक्म करो क्या बात हुई ?

मदन मोहन-'हुआ कुछ नहीं बात यह है कि मैं विनती करना चाहता हूं।'

पति-'आओ ! अंदर आओ बैठो, सेवा बताओ, जो कहोगे किया जाएगा। सब आप महात्मा पुरुषों की तो माया है।

मदन मोहन घर के अंदर चला गया। अंदर जा कर बैठा तो उसकी पत्नी को बुलाया। वह आ कर बैठ गई तो मदन मोहन ने कहा-हे भक्त जनो ! दो सलाईयां गर्म करके ले आओ। भगवान आप का भला करेगा।

वे दम्पति समझ न सके कि क्या मामला है। स्त्री सलाईयां गर्म करके ले आई। मदन मोहन ने सलाईयां पकड़ ली तथा मन को कहता गया, 'देख लो ! जी भर कर देख लो ! फिर नहीं देखना !' यह कह कर सलाईयों को आंखों में चुभो लिया तथा सूरदास बन गया।

वह स्त्री-पुरुष स्तब्ध तथा दुखी हुए। उन्होंने महीना भर मदन मोहन को घर रख कर सेवा की। आंखों के जख्म ठीक किये तथा फिर सूरदास बन कर मदन मोहन वहां से चल पड़ा।

बादशाही कोप

सूरदास गीत गाने लगा। वह इतना विख्यात हो गया कि दिल्ली के बादशाह के पास भी उसकी शोभा जा पहुंची। अपने अहलकारों

द्वारा बादशाह ने सूरदास को अपने दरबार में बुला लिया। उसके गीत सुन कर वह इतना खुश हुआ कि सूरदास को एक कस्बे का हाकिम बना दिया, पर ईर्ष्या करने वालों ने बादशाह के पास चुगली करके फिर उसे बुला लिया और जेल में नज़रबंद कर दिया। सूरदास जेल में रहता था। उसने जब जेल के दरोगा से पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है ? तो उसने कहा–'तिमर।' यह सुन कर सूरदास बहुत हैरान हुआ। कवि था, ख्यालों की उड़ान में सोचा, 'तिमर.....मेरी आंखें नहीं मेरा जीवन तिमर (अन्धेर) में, बंदीखाना तिमर (अन्धेरा) तथा रक्षक भी तिमर (अन्धेर) !' उसने एक गीत की रचना की तथा उस गीत को बार–बार गाने लगा।

वह गीत जब बादशाह ने सुना तो खुश होकर सूरदास को आज़ाद कर दिया, तथा सूरदास दिल्ली जेल में से निकल कर मथुरा की तरफ चला गया। रास्ते में कुंआ था, उसमें गिरा, पर बच गया तथा मथुरा–वृंदावन पहुंच गया। वहां भगवान कृष्ण का यश गाने लगा।

सूर–सागर की रचना

सूरदास भगवान श्री कृष्ण जी की नगरी में पहुंचा। अनुभवी प्रकाश से उसकी आंखों के आगे श्री कृष्ण लीला आई। उसने स्वामी 'वल्लभाचार्य' जी को गुरु माना तथा कहना मान कर 'गऊ घाट' बैठ कर 'श्री मद् भागवत' को भाषा कविता में उच्चारण करना शुरू किया। एक आदमी लिखने के लिए रखा। सूरदास बोलते जाते तथा लिखने वाला लिखता रहा। सूरदास जी ने 75000 चरण लिखे थे कि आप का देहांत हो गया।

'सूर–सागर' आप की एक अटल स्मृति है।

आपकी बाणी का एक शब्द है–

हरि के संग बसे हरि लोक ॥ तनु मनु अरपि सरबसु सभु

अरपिओ अनद सहज धुनि झोक ।।१।। रहाउ ।। दरसनु पेखि भए निरबिखई पाए है सगले थोक ।। आन बसतु सिउ काजु न कछूऐ सुंदर बदन अलोक ।।१।। सिआम सुंदर तजि आन जु चाहत जिउ कुसटी तनि जोक ।। सूरदास मनु प्रभि हथि लीनो दीनो इहु परलोक ।।२।।

(पन्ना १२५३)

परमार्थ–परमात्मा के भक्त परमात्मा के साथ ही रहते हैं। उन्होंने तो अपना सब कुछ हरि को अर्पण कर दिया है। वह सदा सहज प्यार तथा खुशी को अनुभव करते रहते हैं। भगवान के दर्शनों ने उनको ऐसा संयम वाला बना दिया है कि उन्होंने इन्द्रियों पर काबू पा लिया है। जिसका फल यह हुआ कि भगवान ने उनको सब पदार्थ दिए हैं। जब प्रभु का खिलता मुख देखते हैं, तो किसी के दीदार की आवश्यकता नहीं रहती। परमात्मा को छोड़ कर जो लोग अन्य तरफ घूमते हैं, वे अपने तन–मन को नष्ट करते हैं। सूरदास जी कहते हैं, मैं तो उनका हूं, वह मेरे हैं। भक्त प्रभु के हैं।

भक्त परमानंद जी

तै नर किआ पुरानु सुनि कीना ।। अनपावनी भगति नही उपजी भूखै दानु न दीना ।।१।। रहाउ ।। कामु न बिसरिओ क्रोधु न बिसरिओ लोभु न छूटिओ देवा ।। पर निंदा मुख ते नही छूटी निफल भई सभ सेवा ।।१।। बाट पारि घरु मूसि बिरानो पेटु भरै अप्राधी ।। जिहि परलोक जाई अपकीरति सोई अबिदिआ साधी ।।२।। हिंसा तउ मन ते नही छूटी जीअ दइआ नही पाली ।। परमानंद साधसंगति मिलि कथा पुनीत न चाली ।।३।।१।।६।।

(पन्ना १२५३)

भाव–हे मनुष्य ! पुराणों (इतिहास) की कथा सुन कर तुम ने

क्या किया। यह जो कथा-कहानियां सुनी, वह नाशवान भक्ति है। अमर तथा सच्ची भक्ति तो तेरे अन्दर आई नहीं। डीगें मारता रहा, पर किसी भूखे को कमाई में से दान तो कभी नहीं किया। लिंग वासना, क्रोध, लोभ तथा पराई निंदा तो छोड़ी नहीं, यही बड़ी बीमारियां हैं। इसलिए जो थोड़ी बहुत भक्ति तुमने की भी वह भी व्यर्थ ही गई है। हे पुरुष ! तुम राह रोकते रहे, ताक लगाई रखी, ताले तोड़े, इन कामों ने परलोक में तुम्हारी निंदा तथा निरादर करवाया। तुम्हारे यह सारे कर्म मूर्खों वाले हैं। शिकार खेलना नहीं छोड़ा, जीव हत्या करते रहे। कभी पक्षी पर भी दया नहीं की। परमानंद जी कहते हैं सत्संग में जा कर हरि यश नहीं सुना, तो बताओ तुम्हारा कल्याण कैसे होगा ?

आप बड़े अतीत ज्ञानी, विद्वान, हरि भक्त तथा कवि हुए हैं। आप ने अधिकतर समय वृंदावन में गुजारा। आप मुम्बई की तरफ के रहने वाले थे। गांव बारसी ज़िला शोलापुर में आपका जन्म हुआ था। आपका समय 1606 विक्रमी के निकट का है, जब भक्ति लहर जोरों पर चल रही थी। श्री गुरु नानक देव जी, कबीर, रामानंद, नामदेव जी आदि भक्त हरि यश का प्रचार कर रहे थे। इनके लिखे यह ग्रंथ मिलते हैं-परमानंद सागर, परमादास पद, दान लीला तथा ध्रुव चरित्र।

भक्त बेणी जी

भक्तों की दुनिया बड़ी निराली है। प्रभु भक्ति करने वालों की गिनती नहीं हो सकती। इस जगत में अनेकों महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने प्रभु के नाम के सहारे जीवन व्यतीत किया तथा वह इस जगत में अमर हुए, जबकि अन्य लोग जो मायाधारी थे, मारे गए तथा उनका कुछ न बना। ऐसे पुरुषों में ही भक्त बेणी जी हुए हैं। आपका वास्तविक नाम ब्रह्म भट्ट बेणी था। आपका जन्म सम्वत 1670 विक्रमी में 'असनी' गांव में हुआ। आप जाति के ब्राह्मण थे और इतने निर्धन

थे कि जीवन से उदास हो गए थे। रात-दिन यही विचार करते रहते थे कि मानव जीवन का अन्त कर लें, अगला जीवन क्या पता कैसे हो। हो सकता है कि यदि इस जन्म दुखी हैं तो अगले जन्म में सुखी हो जाएंगे। ऐसी ही दलीलें किया करते थे, क्योंकि भूखे बच्चों का रोना उनसे न देखा जाता। हर रोज़ पत्नी झगड़ा करती। वह इसी माया की कमी के दुखों से तंग आ गया तथा हर रोज़ मन ही मन क्लेश करने लगे।

वह उदास हो कर घर से चल पड़े। अचानक रास्ते में उनको एक महांपुरुष मिला। उनके साथ वचन-विलास हुए तो उन्होंने पूछा, 'हे बेणी ! किधर चले हो ?'

बेणी-'महाराज क्या बताऊं, घर में बहुत गरीबी है। इस भूखमरी की दशा ने दुखी किया है। समझ नहीं आता क्या करुं-यही मन करता है कि आत्मघात कर लूं। पत्नी तथा बच्चे अपने-आप भूख से मर जाएंगे। ऐसा सोच कर बाहर को चला हूं।

महांपुरुष-'मरने से दुःख दूर नहीं होते। आत्महत्या करेगा तो आत्मा दुखी होगी, नरकों का भागी बनेगा। मेहनत करो, यदि कोई और मेहनत नहीं करनी तो प्रभु भक्ति की ही मेहनत किया करो। जो भक्ति करता है, परमात्मा उसकी सारी कामनाएं पूरी करता है। जीवों की चिंता परमात्मा को है। कर्म गति है, कर्मों का फल भोगना पड़ता है। किसी जन्म में ऐसा कर्म हुआ है, जो यह दुःख के दिन देखने पड़े। अब तो प्रभु की भक्ति करो तो ज़रूर भला होगा।

उस महांपुरुष का उपदेश बेणी को अच्छा लगा। मन पर प्रभाव पड़ा तो जंगल की ओर चला गया। वह जा कर भक्ति करने लगा। इस तरह कुछ दिन बीत गए। भाई गुरदास जी ने यह शब्द उच्चारा-

गुरमुख बेणी भगति करि जाई इकांत बहै लिव लावै। करम करै अधिआतमी होरसु किसै न अलख लखावै। घर आइआ

जां पुछीअै राज दुआरि गइआ आलावै । घर सभ वथू मंगीअनि वल छल करिकै झत लंघावै । वडा साग वरतदा ओहु इक मन परमेसर धिआवै ।। पैज सवारै भगत दी राजा होइकै घरि चलि आवै । देइ दिलासा तुसि कै अनगिनती खरची पहुंचावै । ओथहुं आइआ भगत पासि होइ दिआल हेत उपजावै । भगत जनां जैकार करावै ।

(भाई गुरदास जी)

जिसका परमार्थ है–महांपुरुष के कथन अनुसार बेणी बाहर एकांत में समाधि लगा कर भक्ति करने के लिए मन एकाग्र कर लेता पर भक्ति गुप्त रखने लग पड़ा। किसी को उसने नहीं बताया था, जब वह घर आता तो पत्नी पूछती कहां से आए हो ?'

राज दरबार में कथा करता हूं। जब कथा समाप्त होगी भोग पड़ेगा तो अवश्य ही राजा दक्षिणा देगा। वह धन पदार्थ बहुत होगा, सारी ज़रूरतें पूरी हो जाएंगी।

यह सुन कर बेणी जी की पत्नी क्रोधित होकर आपे से बाहर हो गई। उसने कहा–'चूल्हे में पड़े तुम्हारा राजा !' कथा का क्या पता कब भोग पड़ेगा। आप मुझे भोजन सामग्री ला दो नहीं तो घर मत लौटना।

अपनी पत्नी के इस तरह के कटु वचन सुनकर बेणी चुपचाप जंगल को चला गया। भक्ति में जा लगा। ऐसी सुरति प्रभु से जुड़ी कि सब कुछ भूल गया। पत्नी का रोना याद न आया। भूखमरी तथा अपनी भूख याद न रही केवल परमात्मा को याद करता गया।

उधर अन्तर्यामी प्रभु ने सत्य ही भक्त की भक्ति सुन ली। अपने सेवक की लाज रखने के लिए, अपने नाम की महिमा व्यक्तकरने के लिए उन्होंने राजा का रूप धारण किया तथा भोजन सामग्री की गाड़ियां भर लीं। धन ढोया तथा जा कर बेणी की पत्नी को पूछा–

'ब्रह्म भट्ट बेणी का घर यही है ?'

बेणी की पत्नी-'जी, यही है। पता नहीं कहां उजड़ा है ? परमात्मा ने राजा के अहलकार के रूप में कहा, 'वह राज दरबार में कथा करते हैं। भोजन सामग्री भेजी है। अन्न है, वस्त्र, मीठा, घी, संभाल लो। कथा पूरी होने पर बहुत कुछ मिलेगा।' बेणी की पत्नी को लाज आई कि वह झूठ नहीं कहते थे, सत्यता ही राजा के दरबार में जाते थे, यूं ही क्रोध किया। उसने सारा सामान रख लिया तथा खुश हो कर बेणी जी को याद करने लगी, यह भी कह दिया, 'जी ! सुबह कुछ नाराज होकर गए हैं, उनको शीघ्र भेज देना।'

प्रभु यह लीला देखकर प्रसन्न हो गए तथा सीधे बेणी जी के पास पहुंचे, उनको जा कर होश में लाया तथा कहा-'होश करो तुम्हारी भक्ति स्वीकार हुई! जाओ, तुम्हारी सारी आवश्यकताएं पूरी हुईं। किसी बात की कमी नहीं रह गई।' बेणी जी ने साक्षात् दर्शन किए। वचन सुने पर जब आगे बढ़ कर नमस्कार करने लगे तो प्रभु अपनी माया शक्ति से अदृश्य हो गए।

सारा कौतुक देखकर भक्त बेणी भक्ति करने से उठे तथा खुशी से गद्‌गद् हो कर वापिस घर को चल दिए। जब घर आए तो उनकी पत्नी उनको प्रसन्नचित्त हो कर मिली। चरणों में माथा टेका, 'मुझे क्षमा करना नाथ ! मैं तो भूल गई भूख ने तंग किया था। अयोग्य बातें मुंह से निकल गईं। मुझे क्षमा कीजिए, आप तो सब कुछ जानते हो। राजा का अहलकार सब कुछ दे गया। अब किसी बात की कमी नहीं। प्रभु ने बात सुन ली।'

बेणी सुन कर प्रसन्न हो गया कि यह सब कुछ प्रभु भक्ति का फल है, जो माया आई तथा साथ ही घर की माया (स्त्री) भी खुश हो गई।

बेणी जी ने भक्ति करते रहने का मन बना लिया तथा प्रसिद्ध भक्त

बना। उनकी बाणी श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में भी विद्यमान है। आप की बाणी का शब्द है-

तनि चंदनु मसतकि पाती ।। रिद अंतरि कर तल काती ।। ठग दिसटि बगा लिव लागा ।। देखि बैसनो प्रान मुख भागा ।।१।। कलि भगवत बंद चिरांमं ।। क्रूर दिसटि रता निसि बादं ।।१।। रहाउ ।। नितप्रति इसनानु सरीरं ।। दुइ धोती करम मुखि खीरं ।। रिदै छुरी संधिआनी ।। पर दरबु हिरन की बानी ।।२।। सिल पूजसि चक्र गणेसं ।। निसि जागसि भगति प्रवेसं ।। पग नाचसि चितु अकरमं ।। ए लंपट नाच अधरमं ।।३।। म्रिग आसणु तुलसी माला ।। कर ऊजल तिलकु कपाला ।। रिदै कूड़ु कंठि रुद्राखं ।। रे लंपट क्रिसनु अभाखं ।।४।। जिनि आतम ततु न चीन्हिआ ।। सभ फोकट धरम अबीनिआ ।। कहु बेणी गुरमुखि धिआवै ।। बिनु सतिगुर बाट न पावै ।।५।।१।।

(पन्ना १३५१)

जिसका परमार्थ-उपदेश देते हैं, पंडित को कहते हैं, हे पंडित ! जरा सुनो तो तुम्हारे हृदय में प्रभु भक्ति भी है। ...तभी तो ब्राह्मण भूखे मरते हैं, भक्ति नहीं करते अपितु आडम्बर करते हैं। आप फरमाते हैं-हे पंडित ! तन को चंदन से तथा माथे को चंदन के पत्ते लगा कर शीतल रखते हो, पर कभी सोचा है तुम्हारे हृदय में तो कटार है। भाव खोट है। हरेक से धोखा करने तथा बगुले की तरह बेईमानी की समाधि लगा कर बैठते हो कि कोई संदेह न करे जब मौका मिले तो खा पी जाए। उपर से तो विष्णु भक्त लगता है, जैसे जान नहीं होती तथा रात को सूरत कुत्ते की तरह हो जाती है। पाप कर्म की तरफ भागा फिरता हुआ काम क्रोध की तरफ जाता है। स्त्री का गुलाम बनता है। चोरी करके खाता है। दो धोती रखता, स्नान करता, जुबान से मीठे बोल बोलता है। मन में बेईमानी, पराया माल लूटने तथा उठाने

की आदत है। आप का जीवन कैसा है ?

वाह रे पंडित ! द्वारिका, काशी आदि जा कर तन पर कष्ट उठाता, पत्थर की पूजा करता हुआ पत्थर रूप बन गया है। लाभ कुछ नहीं। लोगों से माया लेने तथा धोखा करने के लिए नाचता है, गाता है तथा कई प्रकार की लीला करता हैं। वाह ! तेरे ढ़ोंग कभी मृगछाला बिछा कर बैठ गया, कभी तुलसी की माला, चंदन का तिलक, जुबान से जाप, पर कभी यह नहीं सोचा कि हृदय किधर दौड़ता है। ख्याल तो नारी भोग की तरफ दौड़ते हैं। हे पंडित ! यह दिखावा हैं। ज्ञान की आवश्यकता है। आवश्यकता है प्रभु को शुद्ध हृदय से याद किया जाए। मन की वासनाएं रोकी जाए तो प्रभु परमात्मा से मेल होता है।

ऐसा उपदेश देने लग पड़े। परमात्मा ने ऐसा भाग्य बनाया कि उनके घर में कोई भी कमी न रही। वह भजन बंदगी करते रहे। आज उनके नगर असनी में उनकी याद मनाई जाती है। प्रभु को जो स्मरण करते हैं, लोग उनको स्मरण करते हैं। ऐसी नाम की महिमा है। हे जिज्ञासु जनो ! भक्ति एवं नाम का सिमरन करो ताकि कलयुग में कल्याण हो।

भक्त भीखण जी

न्यौछावर जाए शहीदों के सिरताज, ब्रह्मज्ञानी, आप परमेश्वर सतिगुरु अर्जुन देव जी के, जिन्होंने हरेक महापुरुष तथा परमेश्वर भक्त का सत्कार किया। हिन्दू-मुसलमान के सत्कार के साथ उनका भी आदर-सत्कार किया, जिनको ब्राह्मण समाज निम्न समझता था। मानव जाति का सत्कार किया।

भीखण जी मुसलमान फकीर थे। आप का संबंध सूफियों के साथ था तथा वह विख्यात फकीर सैयद पीर इब्राहीम के शिष्य थे। आपका जन्म गांव काकोरी ज़िला लखनऊ में 15वीं विक्रमी के पूर्व

मध्य में हुआ तथा एक महान फकीर व तपस्वी भक्त हुए हैं।

जब सतिगुरु जी श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की रचना कर रहे थे तो भक्त भीखण जी की बाणी भी प्राप्त हुई तथा दो शब्द श्री गुरु ग्रंथ साहिब में लिखवाए। बाणी बड़ी वैराग वाली तथा कल्याण मार्ग की ओर लगाने वाली है। नीचे आपका एक शब्द दिया जाता है, ताकि जिज्ञासु जन लाभ उठाएं।

भीखण जी का देहांत 1631 विक्रमी में हुआ माना जाता है। आप का शब्द श्रवण करो :

नैनहु नीरु बहै तनु खीना भए केस दुध वानी ।। रूधा कंठु सबदु नही उचरै अब किआ करहि परानी ।।१।। राम राइ होहि बैद बनवारी ।। अपने संतह लेहु उबारी ।।१।। रहाउ ।। माथे पीर सरीरि जलनि है करक करेजे माही ।। ऐसी बेदन उपजि खरी भई वा का अउखधु नाही ।।२।। हरि का नामु अंम्रित जलु निरमलु इहु अउखधु जगि सारा ।। गुर परसादि कहै जनु भीखनु पावउ मोख दुआरा ।।३।।१।।

(पन्ना ६५९)

मनुष्य के शारीरिक तीन जन्म होते हैं-बचपन, किशोरावस्था तथा बुढ़ापा। जीवन पहली दोनों अवस्थाओं में नेकी की तरफ नहीं दौड़ता, बल्कि बदी की तरफ बरबस दौड़ता है पर जब बुढ़ापे के दिन आते हैं तो पश्चाताप करता है। भक्त जी इस शब्द में बुढ़ापे के लक्ष्ण तथा जीवन का पश्चाताप ब्यान करते हैं। आप फरमाते हैं बुढ़ापा आया, आंखों में पानी बहता है, शरीर दुर्बल तथा बाल दूध जैसे सफेद हो गए हैं। बुढ़ापे की ऐसी सूरत बन गई है। बोलने लगता है तो गले में बलगम आ जाती है, बोला नहीं जाता। उस समय प्रभु का नाम लेना चाहता है पर बताओ इस दशा में क्या करे ? बस ! निवेदन करने योग्य ही रह जाता है। वह कहता है-'हे प्रभु ! आप ही वैद्य

बनो। मेरा रोग निवृत करो। अपनी शक्ति से ही मेरा उद्धार करो, मुझ से तो कुछ नहीं हो सकता। माथे में दर्द है, शरीर में कंपकंपी आ गई, हृदय में पीड़ा है।'

भक्त जी आप उत्तर देते हैं-ऐसे रोगों की दवा दुनिया के पास से नहीं मिलती। इलाज है-हरि नाम ! प्रभु का नाम सिमरन करना, पर गुरु की कृपा से ही मन भक्ति की तरफ लगता है, अन्य किसी तरह नहीं लगता। जब गुरु की कृपा से मन भजन की तरफ लग जाए तो स्वयं ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है। अर्थात बुढ़ापे के समय तो भक्ति पश्चाताप ही रह जाती है-वास्तव में भक्ति करने का समय सदा ही है। बचपन से ही भक्ति की तरफ बढ़ना चाहिए। भक्ति ही ऊंचा बनाती है।

बाबा शेख फरीद जी

देखु फरीदा जु थीआ दाड़ी होई भूर ॥
अगहु नेड़ा आइआ पिछा रहिआ दूरि ॥१॥

(सलोक फरीद)

ज़िला मुल्तान में 'पाकपटन' एक धार्मिक स्थान है, जहां बाबा फरीद जी की गद्दी है। उनकी गद्दी पर विराजमान होने वालों को 'फरीद' ही कहा जाता है। सतिगुरु नानक देव जी के समय बाबा फरीद ब्रह्म थे पर जिस फरीद जी की कथा करने लगे हैं उनका पूरा नाम शेख फरीद मसऊद शाकर गंज था। आप के पिता एक मशहूर सूफी थे तथा नाम था शेख जमान सुलेमान तथा माता का नाम मरियम था।

फरीद जी के पूर्वज सुल्तान महमूद गज़नवी के साथ संबंध रखते थे। आपके पिता सुल्तान महमूद गजनवी के भतीजे लगते थे। सुलेमान गजनी से चलकर हिन्द में आ गया था। यह पहले लाहौर आकर बैठा। वहीं सूफी मत का प्रचार करके हिन्दू फकीरों को मुसलमान

फकीर बनाया। सूफी फकीरों का जीवन ऊंचा होने के कारण इस्लाम का प्रचार होने लगा।

सुलेमान का फकीरी दायरा कायम हो गया। आप लाहौर से उठ कर जंगली इलाके मुलक की तरफ चले गए तथा अंत उन्होंने पाकपटन में अपना स्थान कायम कर लिया। वहीं बाबा फरीद शाकरगंज ने जन्म लिया। आपका समय गुरु नानक देव जी के समय से पांच सौ साल पहले का माना जाता है। आप ऐसी भक्ति वाले पुरुष हुए हैं कि आपकी बहुत महिमा हुई। आप जी के जीवन की अनेक साखियां हैं। कुछ न कुछ गुरमुखों के लाभ के लिए लिखी जाती हैं। क्योंकि आपकी बहुत सारी बाणी श्री गुरु ग्रंथ साहिब में अंकित की गई है, इसलिए बड़े आदर-सत्कार से पढ़ी जाती है, वैरागमयी है।

बाबा फरीद शाकरगंज का जन्म सम्वत ११७२ ईस्वी में गांव खोतवाल ज़िला मुल्तान में हुआ। जब भारत पर पश्चिम की तरफ से अरब के लोग हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करके आते तो वे भोली-भाली जनता को लूट कर चले जाते या राज करते थे। इस्लाम भारत में पैर टिकाने लग पड़ा था। भक्ति लहर का आरम्भ हो रहा था।

बाबा फरीद जी की माता बड़ी पक्की धर्मात्मा इस्लामी तालीम की ज्ञाता तथा शुद्ध हृदय वाली और ईमानदार थी। उसकी शिक्षा का प्रभाव फरीद जी पर बचपन में ही बहुत पड़ा। आप बारह साल से पहले ही कुरान मजीद अध्ययन कर गए। कहते हैं कि मौखिक याद कर लिया तथा धार्मिक परिपक्व हो गए।

एक दिन उनकी माता ने तपस्या के बारे में बताया तो आप ने विचार बना लिया कि युवा होकर घोर तपस्या करेंगे। युवा हुए, चेतना आई तो घर से तपस्या करने चल पड़े।

पहली घोर तपस्या

पाकपटन के चारों तरफ उस समय घना जंगल होता था। इस इलाके को 'नीली बार' कहा जाता था। बार के जंगल में वनस्पति, बबूल, किकर, टाहली आदि अधिकतर वृक्ष होते थे। किशोर आयु में ही शकरगंज जी ने फैसला कर लिया कि वह घोर तपस्या करेंगे तथा इस विचार से प्रेरित होकर घर से निकल गए। बारह साल जंगल में काटे। बाल बढ़ गए तथा जुड़ गए। प्रभु का सिमरन करते हुए गर्मी तथा सर्दी में रह कर वन की पीलू, करीरों के डेले, थोहर का पक्का फल आदि खा लेते। कई बार वृक्षों के पत्ते भी खा लेते। इस तरह तपस्या करते हुए बारह साल बीते तो सोचा हो सकता है कि बारह साल के बाद भक्ति पूरी हो गई हो। बारह साल की भक्ति का फल कमा लिया।

बाबा शकरगंज घर को चल दिए। वह चलने लगे, रास्ते में चिड़ियां आईं, उनकी तरफ खड़े देखने लग पड़े। मन में अहंकार आया, अहं था, भक्ति की परीक्षा का विचार आ गया, जो नहीं आना चाहिए था। उन्होंने चिड़ियों को कहा, 'मर जाओ।' सचमुच ही चिड़ियां मर गईं। 'उड़ जाओ।' सचमुच ही चिड़ियां उड़ गईं। वे प्रसन्न हो गए तथा जान गए कि भक्ति पूरी हो गई। तपस्या से रिद्धियां-सिद्धियां मिल गईं। अब क्या अन्तर। अच्छा हो गया।

अहंकार का सिर नीचा

बाबा शकरगंज फरीद जी जंगल में से निकल कर एक गांव के समीप आए। उन्हें प्यास लगी थी, प्यास बुझाने के लिए कुएं की तरफ हुए। कुएं पर एक स्त्री पानी निकाल रही थी, पर पानी का डोल निकालती तथा भर कर उल्टा देती थी। बाबा फरीद जी ने आगे

होकर उसको कहा, 'कन्या ! मुझे पानी पिलाओ। मैं फकीर दूर से आया हूं।'

पर उसने एक न सुनी। वह पानी के डोल निकालती गई और उल्टाती गई। फरीद जी देखते रहे। उन्होंने ऊब कर ज़रा क्रोधित होकर कहा, 'मैं कब से कह रहा हूं। पानी फैंकती जा रही हो, मुझे पिलाओ। ज़मीन पर पानी फैंकने से तुम्हें क्या लाभ ?'

ज़रा ठहरो, अभी पानी पिलाती हूं। मेरी बहन का घर जल रहा है, आग बुझा रही हूं। उस स्त्री ने आगे से उत्तर दिया और पानी फैंकती गई।

यह सुन कर बाबा फरीद जी बड़े हैरान हुए। उनको पानी पीने का ख्याल हट गया, मकान जलने का ख्याल आ गया। उन्होंने चारों तरफ देखा, कहीं आस-पास आग नहीं थी लगी। वह पूछने ही वाले थे कि स्त्री ने कहा-'मेरी बहन का घर यहां से बीस कोस दूर है। आग बुझ रही है ज़रा ठहर जाओ। जल्दबाजी करना ठीक नहीं। यहां चिड़ियां नहीं जिनको कहोगे 'मर जाओ' तो वह मर जाएंगी तथा कहोगे 'उड़ जाओ' तो उड़ जाएंगी। यहां यह नहीं।

यह सुन कर फरीद जी की प्यास बिल्कुल बुझ गई। वह हैरान हुए तथा पूछा-'मुझे चाहे पानी न पिलाओ, पर यह बताओ, यह सारी शक्ति जानने तथा आग बुझाने की कहां से प्राप्त की ?

उस औरत ने पानी फैंकना बंद कर दिया। बाबा जी को सम्बोधन करके कहने लगी, 'सेवा तथा पति प्रेम करती हूं। यही तपस्या है, अहंकार नहीं, भला आपने तो परीक्षा की, प्रभु की परीक्षा-मन में संदेह उत्पन्न किया। ऐसा हरगिज़ नहीं था करना चाहिए।'

उस स्त्री ने फरीद जी को पानी पिलाया तथा फरीद जी का ज्ञान एक तरफ हुआ तो क्या देखते हैं कि कुआं खाली है, न डोल, न फिरनी तथा न वह स्त्री। अकेले बाबा फरीद जी खड़े थे। चकित

हुए तथा बोध हुआ कि परमात्मा ने सारा खेल रचाया है। उनके अहंकार को दूर करने के लिए सारा जाल था। आंखें नीचे करके अपने नगर पाकपटन को आ गए। जब घर पहुंचे तो उनकी मां मिली, प्यार दिया, बिठाया तथा आदर किया।

मां ने देखा पुत्र के बाल जुड़े हैं। मां को तरस आया, वह बाल संवारने लगी तो फरीद जी को पीड़ा महसूस हुई। उस समय मां के मुंह से सहज स्वभाव निकल गया-'पुत्र ! जिन वृक्षों के पत्ते तोड़ कर खाता रहा है, उनको पीड़ा नहीं होती थी ? बाल जुड़े हैं, पीड़ा होती है। इसी तरह दूसरे को दुःख दें तो पीड़ा अनुभव होती है। अच्छा है किसी को दुख न दें। इससे शिक्षा लेनी चाहिए, पुत्र ! जैसे आत्मा और शरीर अपना है, वैसे ही दिल तथा शरीर दूसरे का समझो। दर्द-पीड़ा होती है, पक्षी, पशु, मनुष्य तथा वनस्पति सब में प्राण है। पुत्र ! सभी अल्लाह के उत्पन्न किए हुए हैं।

मां की बातें सुन-सुन कर बाबा फरीद जी को कुएं वाली घटना भी याद आई तथा उनको ज्ञान हुआ कि उन्होंने अभी भक्ति नहीं की। जो की थी चिड़ियों की परीक्षा में गंवा ली। अच्छा है फिर भक्ति करूं। इसी विचार में वह कई दिन घूमते रहे तथा उदास रहे। पश्चाताप करते रहते।

दूसरी बार तपस्या करना

फरीदा रोटी मेरी काठ दी लावनु मेरी भुख ॥
जिना खाधी चोपड़ी घने सहनिगे दुख ॥२८॥

बाबा फरीद जी ने दूसरी बार फिर घर छोड़ दिया। आप जंगलों को चले गए तथा घोर तपस्या करने लगे। खाना छोड़ दिया तथा वन की पीलू या कोई फल ही मुंह में डालते, वह भी धरती पर गिरा हुआ। किसी वृक्ष से पत्ता न तोड़ते। उनको ज्ञान हुआ था विनम्रता

ही भगवान को भाती है। इस तरह कई साल बीत गए तथा उनका शरीर कमज़ोर होने लगा। धीरे-धीरे दशा बिगड़ गई। भगवान के दर्शन की मन में लालसा थी, पर भगवान के दीदार नहीं होते थे। उस समय की शारीरिक; मानसिक अवस्था को बाबा जी ने स्वयं ब्यान किया। सलोक-

कागा करंग ढंढोलिआ सगला खाइआ मासु ॥
ऐ दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की आस ॥९१॥

भाव-शरीर इतना सूख गया कि केवल पिंजर ही नज़र आने लगा। जब आप लेटते तो मांस खाने वाले जानवर इस तरह देखा करते जैसे आप प्राणहीन हैं। आप उनको कहते, मांस तो भगवान का प्यार ही खा गया, पर भाग्य की बात अभी दीदार नहीं हुए, परमेश्वर नहीं आया, ऐसी विधाता की विधि है। कई साल बीत गए।

इस तरह अनेकों साल भक्ति करते रहे तथा फिर पाकपटन आ गए। प्रभु के दर्शन भी एक दो बार हुए, मन को संतुष्टि हुई, पर पूर्णता प्राप्त न हुई। विनम्रता, निरवैरता, निर्भयता आ गई। नया चाव उत्पन्न हुआ कि मुरशद (गुरु) के बिना मन को संतोष नहीं हो सकता। मुरशद धारण करना चाहिए।

मुरशद धारण करना

आज से लगभग सौ साल पूर्व तथा दस हज़ार साल पहले-लाखों साल पहले मुरशद अथवा गुरु की आवश्यकता रही है। पंजाब में तो मुहावरा है कि 'गुरु बिना गति नहीं।' आज भी गुरु या उस्ताद धारण करना पड़ता है, तभी किसी को गुण का बोध होता है। आत्मिक जगत में तो कल्याण प्राप्ति के लिए गुरु धारण करना अति आवश्यक है। सिक्ख धर्म में दस गुरु हुए हैं तथा गुरुबाणी भी गुरु है। भाव श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की बाणी सुनना, पढ़ना, उस पर अमल करना

तथा उसके आगे सिर झुकाना। गुरु देहधारी होता था, आज सिक्ख धर्म में देहधारी गुरु की कोई मान्यता नहीं है।

बाबा फरीद जी मुरशद की तलाश के लिए बार में से चल पड़े तथा अजमेर पहुंचे। उस समय अजमेर में सूफी फकीर बड़ी करनी वाले थे। उनका नाम चिश्ती साहिब था।

आप अजमेर हज़रत चिश्ती साहिब के डेरे पहुंच गए और उनको मुरशद मान कर सेवा करने लगे। सेवा एवं श्रद्धा ही भक्ति का बहुमूल्य गुण है। इसे ही कर्म जानें। हे जिज्ञासु जनो ! जिन्होंने सेवा नहीं की, किसी पर श्रद्धा नहीं रखी वह कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। प्राप्ति के लिए सेवा एवं श्रद्धा दो ही गुण हैं। आप डट कर सेवा करते रहे।

सर्दी के दिन थे। सेवा यह मिली थी कि गर्म पानी से दो बार मुरशद को स्नान करवाना। स्वयं ही अग्नि जलानी और पानी गर्म करना। परमात्मा की विधि से ऐसा सबब बन गया कि दिन भर बारिश होती रही। बारिश भी ऐसी हुई कि प्रलय था। सुरक्षित अग्नि का सारा धूना बुझ गया। फरीद जी को चिंता लग गई कि वह सुबह अग्नि कहां से लेंगे ? उस काल में माचिस नहीं होती थीं। इसलिए अग्नि संभाल कर रखनी पड़ती थी।

बाबा फरीद जी डेरे से चल पड़े। वर्षा हो रही थी और बाहर बाज़ार में काफी कीचड़ था। उन्होंने वर्षा एवं कीचड़ की कोई परवाह न की। टिंड लेकर वह कम्बल ओढ़ कर चल पड़े। अग्नि उन्हें कहीं दिखाई न दी। उन्होंने बाजार में देखा कि 'वेश्या' की बैठक में अग्नि जल रही थी। बाबा फरीद जी निडरता से अंदर दाखिल हुए।

वासना एवं कुकर्मों की ज्वाला से जली हुई वेश्या ने देखा कि काले चोले वाला ऊंचा लम्बा साईं उसकी बैठक में आया है। वह उनके आगमन पर अपने आप को सौभाग्यशाली समझने लगी। वह

मन ही मन में कुछ और ही सोचती रही लेकिन उसका सोचना फरीद जी के विपरीत था।

बाबा फरीद जी ने जाकर कहा–'माता जी ! अग्नि चाहिए। खुदा की रज़ा से इस समय बारिश हो रही है। वली मुरशद चिश्ती जी का धूना इस समय ठंडा हो गया है। प्रातःकाल अग्नि की आवश्यकता है। यदि अग्नि न मिली तो स्नान कैसे होगा और चिश्ती जी खुदा की बंदगी कैसे करेंगे ? इसलिए यह ज़रूरी है कि अग्नि मिल जाए। कृपा कीजिए।'

यह वचन सुनकर बदकिस्मत और कुकर्मी वेश्या हंस पड़ी। वह बोली, पीर जी के धूने के लिए अग्नि की आवश्यकता है। यह तो ठीक है लेकिन मुझे भी आवश्यकता है।

बाबा फरीद जी–'माता जी ! आपको किस चीज की आवश्यकता है ?'

वेश्या–'साईं जी मुझे आपकी आवश्यकता है।'

बाबा फरीद जी–'आपको मेरी आवश्यकता क्यों है ?'

वेश्या–'आपका बदन बहुत सुन्दर है। आपकी आंखें मुझे बहुत प्यारी लगी हैं। एक शर्त पर आग मिल सकती है।'

बाबा फरीद जी–'किस शर्त पर ?'

वेश्या–'अपने शरीर का कोई अंग मुझे दे दें और नहीं तो एक आंख की पुतली देनी पड़ेगी।

बाबा फरीद जी–'आंख ले लीजिए। माता जी ! मुझे कोई इन्कार नहीं लेकिन अग्नि अवश्य मिल जाए।'

इतिहास में लिखा है कि बाबा फरीद जी की आंख वेश्या निकालने को तैयार हो गई। उसने तेज चाकू लिया और आंख पर लगाया। लेकिन उसका हौंसला न पड़ा। उसे धक्का लगा और पीछे गिर गई। लेकिन फरीद जी की आंख पर घाव हो गया। वेश्या ने कपड़ा फाड़

कर आंख पर पट्टी बांध दी और फरीद जी को अग्नि दे दी। वेश्या का हृदय थर-थर कांपने लग गया। उसने फरीद जी से अपनी भूल की क्षमा मांगी तब उसके जीवन में परिवर्तन आया।

बाबा फरीद जी आग टिंड में डालकर डेरे लौट आए। मार्ग में वह कई बार फिसलने से भी बचते रहे।

नियमानुसार उन्होंने प्रातःकाल उठकर अग्नि जलाई। अग्नि जलाकर पानी गर्म किया। गर्म पानी से फरीद जी ने मुरशद को स्नान करवाया। जब मुरशद ने वस्त्र आदि पहन लिए तो अन्तर्यामी मुरशद ने बाबा जी से कहा-'फरीद आंख पर पट्टी क्यों बांधी हुई है ?'

'आप कर्ता-धर्ता हैं। मैं क्या बताऊं ?' फरीद जी ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया। वह झूठ बोलना नहीं चाहते थे और सत्य कहने से झिझक रहे थे।

'पट्टी खोल दो।' मुरशद ने हुक्म दिया।

'फरीद जी ने पट्टी खोली तो आंख पर कोई घाव नहीं था। घाव मिल गया था और आंख ज्यों की त्यों ही थी। मुरशद ने वचन किया, 'फरीद तुम्हारी सेवा प्रवान हुई, तुम्हारी तपस्या पूर्ण हुई, अहंकार मत करना। नम्रता अपनाना और खुदा को सदैव याद रखना भूलना मत तथा अपने आप की परख मत करना। जाओ ! रिद्धियां-सिद्धियां सारी बरकतें आपके साथ रहेंगी। अपने घर जाकर खुदा की महिमा गाओ। भूले भटके लोगों को सच्चाई एवं ज्ञान मार्ग दिखाना। दुखियों के दुःखों को नाश करो।'

हज़रत चिश्ती साहिब प्रसन्नता पूर्वक वर देते गए और बाबा फरीद जी उनके चरण पकड़कर श्रवण करते हुए कृतार्थ हो गए। मुरशद ने सेवा, त्याग एवं श्रद्धा के फलस्वरूप बाबा फरीद जी को सब अजमतें बख्श दीं। सब अजमतें प्राप्त करके फरीद जी अपने मुरशद के चरणों पर नमस्कार करते हुए पाकपटन आ गए।

पाकपटन में उपदेश और गद्दी

बाबा फरीद जी अपने घर पाकपटन वापिस लौट आए और पीर बन कर उपदेश करने लगे। आप ने वहां पर सारी बार और जंगलों में इस्लाम का प्रचार किया। नेकी, सत्य और विनय का प्रकाश चारों तरफ जगमगाया तथा आपकी गद्दी की कीर्ति-यश फैल गया। जो भी उस गद्दी पर विराजमान होता, उसका नाम फरीद रखा जाता। इस तरह गुरु नानक देव जी का समय आया तो इब्राहिम ब्रह्म फरीद जी की गद्दी पर विराजमान थे। अभी भी यह गद्दी एक करामाती गद्दी मानी जाती है।

फरीद शकरगंज तथा फरीद इब्राहीम की उच्चारी हुई बाणी मिलती है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में आप जी की बाणी के सलोक विद्यमान हैं, जिन्हें सलोक फरीद जी कहा जाता है। सारी बाणी कल्याणकारी एवं उपदेश प्रदान करती है। निम्नलिखित व्याख्या सहित कुछ बाणी दी गई है-

भिजऊ सिजऊ कंबली अलह वरसऊ मेहु ॥
जाई मिला तिना सजना तुटऊ नाही नेहु ॥२५॥
फरीदा मै भोलावा पग दा मतु मैली होइ जाई ॥
गहिला रूहु न जानई सिरु भी मिटी खाई ॥२६॥
फरीदा सकर खंडु निवात गुड़ु माखिओ मांझा दुधु ॥
सभे वसतू मिठीआं रब न पुजनि तुधु ॥२७॥
फरीदा रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख ॥
जिना खाधी चोपड़ी घने सहनिगे दुख ॥२८॥
रुखी सुखी खाई कै ठंडा पानी पीऊ ॥
फरीदा देखि पराई चोपड़ी ना तरसाए जीऊ ॥२९॥
अजु न सुती कंत सिऊ अंगु मुड़े मुड़ि जाई ॥

जाई पुछहु डोहागणी तुम किऊ रैणि विहाई ।।३०।।
साहुरै ढोई ना लहै पेईऐ नाही थाऊ ।।
पिरु वातड़ी न पुछई धन सोहागनि नाऊ ।।३१।।
साहुरै पेईऐ कंत की कंतु अगंमु अथाहु ।।
नानक सो सोहागनी जु भावै बेपरवाह ।।३२।।
नाती धोती संबही सुती आई नचिंदु ।।
फरीदा रही सु बेड़ी हिंञु दी गई कथूरी गंधु ।।३३।।
जोबन जांदे ना डरां जे सह प्रीति न जाई ।।
फरीदा किंती जोबन प्रीति बिनु सुकि गए कुमलाई ।।३४।।
फरीदा चिंत खटोला वाणु दुखु बिरहि विछावन लेफु ।।
ऐहु हमारा जीवना तू साहिब सचे वेखु ।।३५।।
बिरहा बिरहा आखीऐ बिरहा तू सुलतानु ।।
फरीदा जितु तनि बिरहु न उपजै सो तनु जानु मसानु ।।३६।।
फरीदा ऐ विसु गंदला धरीआं खंडु लिवाड़ि ।।
इकी राहेदे रहि गए इकि राधी गए उजाड़ि ।।३७।।
फरीदा चारि गवाइआ हंढि कै चारि गवाइआ संमि ।।
लेखा रबु मंगेसीआ तू आंहो केरेह कंमि ।।३८।।

(सलोक फकीर)

भक्त सधना जी

मानव जीवन में सदा परिवर्तन आता रहता है। वह परिवर्तन किसी न किसी घटना पर होता है और जीवन को बदल कर रख देता है। भक्त सधना कसाई था लेकिन प्रभु भक्त बन गया। आपकी कथा श्रवण कीजिए।

भक्त सधना जी के माता-पिता के नाम का पता कहीं नहीं मिलता। कर्म कसाई का था। आपका जन्म नगर सेवान (हैदराबाद, सिंध)

में हुआ और उसी नगर में ही वास रहा। सधना जी को बचपन से ही सन्तों-फकीरों एवं महापुरुषों के पास बैठकर ज्ञान चर्चा सुनने की श्रद्धा थी। आप मूर्ति पूजक थे। इनको कहीं से सालगराम का पत्थर मिल गया था, जिसे मांस तोलने के लिए भार बना लिया। जिसे लोग बुरा मानते लेकिन लोगों को इस बात का पता नहीं था कि सधना जी सालगराम को देवता मानकर पूजते और उसके सहारे ही वह अपना मांस बेचने का कामकाज करते थे। सधना जी सालगराम से लाभ ही प्राप्त करते और वह उनके जीवन का सहारा था।

हिन्दू पंडित एवं संतों में बड़ी चर्चा हो रही थी कि सधना कसाई सालगराम से मांस क्यों तोलता है ? एक दिन एक संत सधना जी की दुकान पर आया और विनती की कि 'हे सधने ! यह काला पत्थर मुझे दे दो, मैं इसकी पूजा-अर्चना किया करूंगा। यह सालगराम है, तुम कोई अन्य पत्थर रख लो। यह तुम्हारे लिए भार तोलने के कार्य योग्य है।'

सधना जान गया कि यह सन्त सालगराम ले जाना चाहता है। सधना ने बिना झिझक सालगराम उठा कर सन्त को पकड़ा दिया। वह सालगराम लेकर अपने डेरे को चला गया। डेरे पहुंच कर उसने सालगराम को स्नान करवाया और धूप-दीप जलाकर चंदन का तिलक लगाया तथा पुष्प भेंट किए। सन्त ने पूजा की और रात होने पर सो गया। जब साधू सोया हुआ था, तब उसे एक स्वप्न में सालगराम ने कहा-"तुम ने यह बहुत बुरा किया है, सधने के पास मैं बहुत खुश था क्योंकि वह हृदय से प्रेम एवं मेरी पूजा करता था, सच्ची श्रद्धा के साथ वह मेरा हो चुका था। वह मुझ से अटूट प्रेम करता है, मैं पूजा एवं सत्कार का भूखा नहीं, अपितु प्रेम का भूखा हूं, सधना मांस तोलते हुए भी मुझे याद करता था, मुझे उसके पास छोड़ आओ।"

यह वचन सुनकर संत की नींद खुल गई। वह सोचता हुआ और

अपने किए कर्म पर पछताता रहा। जब दिन उदय हुआ तो संत सधने के पास वापिस गया। उसने सधने को कहा-'सधना जी ! अपना सालगराम वापिस ले लो। यह आपके पास ही ठीक है। आप धन्य हो, जिसे परमेश्वर याद करता है।

'क्यों संत जी ?' सधने ने पूछा तो संत ने उसको रात के सपने की सारी बात कह सुनाई। यह बात सुन कर सधना के मन में और ज्यादा चाव तथा प्रेम उत्पन्न हो गया। वह प्रभु भक्ति करने लग गया। भक्त सधना उसी सालगराम के साथ मांस तोलता और उसकी पूजा-अर्चना करता। मन में सदा प्रभु का सुमिरन करता रहता।

भक्त सधना का मांस बेचने का कार्य छोड़ना

एक दिन की बात है, रात के समय एक साहूकार सधना जी के पास बकरे का मांस लेने के लिए आ गया। सधना ने बताया कि इस समय मांस नहीं है, क्योंकि जो बकरा बनाया था, वह समाप्त हो गया है। साहूकार स्नेही व्यक्ति था, जिस कारण सधना उसे मोड़ भी नहीं सकता था। इसलिए सधने ने जीवित बकरे के 'कोफ्ते' काटकर साहूकार को देने चाहे। जब सधना छुरी पकड़कर बकरे के निकट गया तो बकरा हंस पड़ा। हंस कर कहने लगा, 'हे सधना ! जगत से बाहरी करने लगे हो।' यह सुनकर सधना जी बहुत हैरान हुए कि यह जानवर बोल रहा है। उसी समय सधने के हाथ से छुरी भूमि पर गिर गई। सधने ने बकरे से पूछा-'हे बकरे ! यह बताओ मैं क्या नया खेल रचने लगा हूं। मेरा कर्म है तुझे मार कर बेचना।'

बकरा बोला, 'सुनो ! पहले यह सिलसिला चला आ रहा है कि कभी मैं बकरा और तुम कसाई और कभी मैं कसाई और तुम बकरा। इस जन्म में तुम मेरे शरीर का एक अंग साहूकार को काटकर देने लगे हो। यह नया खेल है। कल को मैं भी तुम्हारे साथ ऐसा ही

करूंगा क्योंकि हम कर्म के एक दूसरे के साथी हैं। यह अपना धर्म बन चुका है। एक-दूसरे का मांस काटकर बेचना।'

बकरे की बात ने सधने को एक नया ज्ञान करवा दिया। उस दिन से सधना ने साहूकार को स्पष्ट जवाब दे दिया और अगली सुबह मांस बेचने का धन्धा छोड़ दिया। वह प्रभु भजन करने लगा।

हत्या का आरोप लगना

भक्त सधना जी को जब पूर्ण ज्ञान हो गया कि प्रभु का नाम जपने में ही भला है तो वह पुरुषोतम जी के दर्शनों के लिए जगन्नाथ पुरी की यात्रा के लिए सिंध में से चल पड़ा। जगन्नाथ पुरी शहर पहुंचने से एक पड़ाव समीप ही उसको रात हो गई। उसने सोचा कि किसी गृहस्थी के घर से भोजन मांग कर खा लूं और रात्रि कहीं बिता दूं और फिर आगे चलेगा। यह सोचकर एक घर के द्वार के आगे खड़े होकर उसने आवाज़ दी। उस घर में दो ही सदस्य रहते थे। नारी की आयु लगभग २०-२२ साल थी। वह बड़ी सुन्दर एवं नवयौवना थी लेकिन उसका पति कुरुप और रोगी था। उस सुन्दरी ने जब सधना जी को देखा तो आगे बुला लिया। वह बड़ी नम्रता एवं प्रेम भरे शब्दों में बोली, 'अन्दर आइए ! गृह पवित्र करें, धन्य भाग्य हमारे जो आप पधारे हो। ईश्वर आए हो। भोजन लीजिए, बिस्तरा और चारपाई पर आराम करें। मैं सेवा करती हूं।'

उसकी यह श्रद्धा देखकर सधना जी उसके आंगन में पहुंच गए और चारपाई पर बैठ गए। उस सुन्दर स्त्री ने बड़े चाव और श्रद्धा के साथ भोजन तैयार किया। भोजन तैयार करके सधना जी के चरण धुलाए और चौंतरे में बिठा कर भोजन खिलाया। जितनी देर सधना जी भोजन करते रहे, उतनी देर वह स्त्री पंखा झलती रही। उसी तरह जैसे पति को एक पत्नी पंखा झलती है। साथ-साथ वह प्रेम भरी

मीठी-मीठी बातों से पूछती रही कि सधना जी किधर से आए हो और कहां जा रहे हैं तथा क्यों साधू बने हैं ।

जब सधना ने भोजन कर लिया तो उस सुन्दरी ने एक अच्छा बिस्तरा बिछा कर रात काटने के लिए सधना से विनती की । सधना ने उस स्त्री की विनती स्वीकार कर ली । प्रभु नाम का सिमरन करता हुआ भक्त सो गया। जब आधी रात का समय हुआ तो वह सुन्दर नवयुवती शृंगार करके सधना जी की चारपाई पर आ गई । उसके हृदय में कामवासना थी । वासना ने उसके रक्त को उबाल दिया । वह वासना में अन्धी हो गई थी । उसका यह पागलों वाला व्यवहार देखकर सधना जी ने कहा, 'बहन ! आप मेरे पास से जाइए। प्रत्येक स्त्री को पतिव्रता रहना चाहिए । मैं तो पहले ही पापों के कारण दर-दर भटक रहा हूं, मुझे और पापों का भागी मत बनाओ । जाओ ! आप मेरी बहन हैं ।'

उस स्त्री की विपरीत बुद्धि वासना के मंद कारण उसने उल्टा ही सोचा था । उसने ख्याल किया कि शायद संत उसके पति से डरता है । वह वापिस लौट गई और दस मिनट के पश्चात अपने पति का सिर काट कर सधना जी के पास ले आई । सधना जी को अपने पति का कटा सिर दिखलाकर बोली, 'हे प्रियतम ! यदि तुम्हें मेरे पति का भय था तो यह लो उसका सिर, मैं उसको अपना पति नहीं मानती थी, मेरे माता-पिता ने जबरदस्ती मेरा विवाह कर दिया । वह निकम्मा और रोगी था, इसको मरना ही चाहिए था । अब मैं आपको अपना पति मानती हूं। मुझे अपना बनाकर मुझसे प्रेम कीजिए । मेरे यौवन के नशे को लूटो। छोड़ें, शर्म-हया तथा सारी झिझकें, मैं आपके साथ संतनी होकर फिरूंगी । जीवन में भोग विलास ही तो सब कुछ है ।'

सधना जी उसकी सारी बातें सुनते रहे । जब उसने मन में आई

सारी बकवास कर ली तो क्रोधित होकर बोले, 'चंडालन ! पापिन ! तुम ने महापाप किया है। इस पाप के फलस्वरूप तुम्हें नरक भोगना पड़ेगा। मैं पाप करने के लिए तैयार नहीं। मैं तेरे घर से अभी जा रहा हूं। तुम विष की गंदल हो ! नागिन हो ! जिसने अपने पति का खून कर दिया वह पराए मर्द से कैसे प्यार करेगी। धिक्कार है, ऐसे प्यार को जिसके डंक का कोई ईलाज नहीं। सधना जी आपे से बाहर हो गए।

वह इतना कहते हुए उठने लगे तो यह देखकर वह महां पापिन हत्यारिन चिल्ला उठी, 'अरे मेरे पति को मार कर मेरे साथ कुकर्म करना चाहता है। तुम सन्त नहीं, हत्यारे हो। लोगों ! मैं लूट गई, अरे ! भागो ! मेरे प्यारे पति की सन्त ने हत्या कर दी है। पकड़ो दौड़ने लगा है। उस पापिन का यह शोर देखकर सधना जी हैरान अवश्य हुए, पर घबराए नहीं। उन्होंने सोचा कि देखा जाएगा, ईश्वर क्या करता है ? शायद मेरे किसी पाप का फल मिलना रह गया है, जो मैं इस पापिन के घर रात काटने के लिए रुक गया। यह सब प्रभु की लीला है।

उस स्त्री का शोर सुनकर लोग इकट्ठा हो गए। उसकी बात सुनकर उन्होंने सधना जी को घेर लिया और पकड़कर हाकिम के पास पेश किया। हाकिम भी ऐसा था कि उसने तुरंत सधना जी के हाथ काट देने का हुक्म दे दिया। उस समय सधना जी ने प्रभु के आगे प्रार्थना की-

त्रिप कंनिया के कारनै इकु भइआ भेखधारी ॥
कामारथी सुआरथी वा की पैज सवारी ॥१॥
तव गुन कहा जगत गुरा जउ करमु न नासै ॥
सिंघ सरन कत जाईऐ जउ जंबुकु ग्रासै ॥१॥ रहाउ ॥
एक बूंद जल कारने चात्रिकु दुखु पावै ॥

प्रान गए सागरु मिलै फुनि कामि न आवै ॥२॥
प्रान जु थाके थिरु नही कैसे बिरमावउ ॥
बूडि मूए नउका मिलै कहु काहि चढ़ावउ ॥३॥
मै नाही कछु हउ नही किछु आहि न मोरा ॥
अउसर लजा राखि लेहु सधना जनु तोरा ॥४॥

(पन्ना ८५८)

भाव-हे ईश्वर ! राजकन्या के साथ विवाह रचाने के लिए एक बढ़ई ने विष्णु का रूप धारण कर लिया था। वह कथा इस प्रकार थी कि एक राजकन्या ने प्रण किया कि वह भगवान विष्णु के अलावा किसी से विवाह नहीं करेगी। एक बढ़ई ने किसी तपोबल द्वारा विष्णु रूप तो धारण कर लिया लेकिन उसके पास भगवान विष्णु जी वाली शक्ति नहीं थी। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर उसने प्रार्थना की तो उसके पास शक्ति आ गई।

हे प्रभु ! उस कामुक एवं खुदगर्ज इन्सान की भी लाज रख ली, मेरी इज्जत क्यों नहीं बचाते ! हे जगत पालक ! हे भगवान ! तुम्हारी क्या प्रशंसा है कि तुम्हारी कृपा से मेरे कर्म न नाश हो। उस मनुष्य शेर को अपना गुरु क्यों मानना है, यदि गीदड़ों ने ही घेर कर रखना है। जल की एक बूंद के बदले पपीहा कूकता है। यदि वह प्यासा ही मर जाए, मृत को समुद्र में फैंक दिया जाए तो उसका क्या लाभ है ? प्रभु मेरे नैन प्राण काम नहीं करते। हृदय धड़क रहा है। मैं इनको कैसे सहारा दूं ? हे प्रभु ! डूब गए पुरुष के लिए नाव किस काम ? मैं तेरा हूं। इस समय मेरी लाज रखो। मेरे पिछले कर्मों को क्षमा कर दें। हे दाता ! दया कीजिए।

हाकिम का हुक्म और लोगों के शोर मचाने पर भक्त सधना जी को हत्यारा मान लिया गया और उसके हाथ काट देने का हुक्म हाकिम ने वापिस न लिया। सधना के हाथ काट दिए गए। हाथ काटे गए

तो परमात्मा ने हाकिम को बताया कि असली कातिल सधना नहीं अपितु एक नारी है।

एक पड़ोसन जिसने सारा तमाशा देखा था, उसको परमात्मा ने प्रेरणा दी और वह शोर मचाने लगी कि संत को बिना किसी दोष के सज़ा दे दी गई। यह कत्ल तो चंचल नारी ने आप किया है। असली कातिल यही है। यह सुनकर लोग उसको पकड़कर ले गए और हाकिम के आगे पेश किया। हाकिम ने उस स्त्री को धरती में दफना कर मरवा दिया। भक्त सधना जी बिना हाथों के अपंग घूमते रहे और प्रभु की भक्ति में लिवलीन रहे। प्रभु की अनुकंपा से सारी रिद्धियां-सिद्धियां प्राप्त हुईं। आपकी समाधि सरहंद नगर में है।

सत्ता और बलवंड

सत्ता और बलवंड दोनों सगे भाई थे। वह भाट जाति से थे और पांचवें पातशाह श्री गुरु अर्जुन देव जी के समय उनकी हजूरी में कीर्तन किया करते थे। रागों में निपुण होने के कारण वह अच्छे रबाबी बन गए। उनकी चारों तरफ कीर्ति थी और गुरु घर में उनको अच्छा मान-सम्मान प्राप्त था। उनका कीर्तन सुनकर सारी संगत का समां बंध जाता था। सत्ता की लड़की जवान हुई तो उसका विवाह करने का निर्णय किया गया। गुरु घर के रबाबी होने के कारण उन्होंने सलाह की कि लड़की का विवाह बड़ी धूमधाम के साथ किया जाएगा लेकिन सत्ता और बलवंड के पास इतना धन नहीं था कि जो अच्छा दहेज दे सकें और आए मेहमानों एवं बारातियों को अच्छा से अच्छा भोजन खिला सकें। सत्ता ने अपने भाई बलवंड से सलाह करके मन में सोचा कि वह सतिगुरु जी के आगे प्रार्थना करेंगे कि सतिगुरु जी एक दिन की सारी भेंट उन्हें देने की कृपा करें, वह भेंट अधिक होगी तथा उनके सारे कार्य संवर जाएंगे।

यह सोचकर दोनों भाई सतिगुरु जी के पास गए और विनती की, 'महाराज ! हमारी लड़की का विवाह है लेकिन विवाह का खर्च पूरा करने के लिए हमारे पास कुछ नहीं, इसलिए आप जी कृपा करके आज की सारी भेंट हमें देकर मेहर करें ।'

रबाबियों की यह बात सुनकर सतिगुरु जी मुस्करा दिए और वचन किया, 'राय कन्या की शादी की चिन्ता न करो। गुरु घर में कीर्तनीए होने के कारण आपको कोई कमी नहीं आएगी। आवश्यकता अनुसार आपको धन मिल जाएगा ।

लेकिन सत्ता और बलवंड सतिगुरु जी के वचनों का भावार्थ न समझ सके, उनके मन में लालच आ गया था। सतिगुरु जी उनके मन की बदली हुई दशा को जान गए थे। इसलिए गुरु जी अहंकार की अग्नि से उन दोनों को बचाना चाहते थे। लेकिन रबाबी अहंकार से न बच सके और उन्होंने अपनी जिद्द न छोड़ी। अन्त में सतिगुरु जी ने वचन किया, 'ठीक है, जो भेंट कल संगत चढ़ाएगी आप ले जाना और उससे अपनी पुत्री की शादी कर लेना ।'

प्रातःकाल सत्ता और बलवंड ने कीर्तन करना शुरू किया लेकिन उनकी वृति कीर्तन की तरफ से उखड़कर भेंट की ओर लग गई। कीर्तन के समय जो भी सिक्ख या गुरु घर का श्रद्धालु आकर नमस्कार करता तो दोनों भाईयों की निगाह उसके चढ़ावे की तरफ लग जाती। इस तरह कीर्तन में रस न रहा, ताल की एकसुरता टूट गई और लै कांपने लगी। गुरुबाणी में भी कई भूलें होने लगीं तथा बेरसी छा गई।

उनके कीर्तन की बेरसी और संगत के कम आने के कारण ऐसा सबब बना कि एक सौ रुपए से अधिक चढ़ावा भेंट न हुआ। भेंट कम देखकर दोनों भाईयों के सिर में पानी फिर गया।

वह कुछ गुस्से और हैरानी के साथ बोले, 'महाराज ! संगत की ओर से भेंटें बहुत कम चढ़ाई गई हैं, इसलिए हमारी और सहायता

कीजिए, इतने से शादी नहीं हो सकती ।

यह सुनकर पांचवें पातशाह मुस्कराए और वचन किया, 'भाई आप ने चढ़ावे का फैसला किया था । इसलिए चढ़ावा ले जाओ । कन्या की किस्मत में जो कुछ होगा, वह उसको मिल जाएगा । लड़की की चिन्ता न करो पर अपना वचन निभाओ ।'

उस समय दोनों भाईयों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई तथा उनको किसी बात की समझ ही नहीं आई । मन में अहंकार था कि वह कीर्तनीए हैं, यदि कीर्तन न करेंगे तो गुरु का दरबार कैसे लगेगा ? सतिगुरु महाराज जी की शक्ति का अनुभव भी भूल गया और अहंकार करके घर बैठने का फैसला कर लिया ।

अगली सुबह 'आसा की वार' का कीर्तन होना था लेकिन दोनों ही रबाबी हाजिर न हुए और घर में पलंग पर लेटे रहे । दरबार में संगत इंतजार करने लगी । सतिगुरु जी भी अपने नियम अनुसार दरबार में उपस्थित हुए और सिंघासन पर विराजमान हो गए । गुरु जी ने रबाबियों को दरबार में अनुपस्थित देखकर एक सिक्ख को कहा कि वह उन दोनों को बुला कर लाए । श्रद्धालु सिक्ख दौड़ कर गया । उसने दोनों भाईयों सत्ता और बलवंड को जाकर कहा, 'श्रीमान जी ! सच्चे पातशाह आपको याद कर रहे हैं, आप चलकर कीर्तन करो ।'

यह सुनकर सत्ते के तनबदन में आग लग गई और पागलों की तरह गुस्से से बोला, 'हमने कोई कीर्तन नहीं करने जाना । यदि हमने चढ़ावे के लिए कहा तो मसंदों द्वारा चढ़ावा रोक दिया गया । हमारे साथ भेदभाव किया गया है । इसलिए आज से हम गुरु घर में कीर्तन नहीं करेंगे । किसी और सोढी या बेदी के आगे कीर्तन करके उसको गुरु बना सकते हैं । गुरु बनाना या न बनाना हमारे वश में है ।

यह उत्तर सुनकर सिक्ख वापिस लौट आया और उसने सारी बात सतिगुरु महाराज जी के आगे व्यक्त कर दी ।

दया एवं विनय के सागर सच्चे पातशाह नाराज न हुए अपितु भाई गुरदास जी को यह कह कर भेजा कि वह रागियों को सत्कार सहित दरबार में ले आएं। उनकी कन्या का विवाह उसी तरह धूमधाम से हो जाएगा, जैसा वह चाहते हैं।

भाई गुरदास जी सत्ता और बलवंड के घर पहुंचे। उन्होंने बड़ी नम्रता से दोनों को समझाने का प्रयास किया लेकिन रबाबियों का गुस्सा शांत न हुआ। भाई बलवंड ने बड़े गुस्से और मूर्खता के साथ यह जवाब दिया, 'जाओ आप कीर्तन कर लो। गुरु यदि इतनी शक्ति रखते हैं तो वह आप ही कीर्तन करें। हम आगे से गुरु दरबार में कीर्तन नहीं करेंगे।' भाई गुरदास जी ने फिर भी इसका गुस्सा न किया अपितु सत्ता और बलवंड को समझा कर उनके मन को शांत करने का अथक प्रयास किया लेकिन वे टस से मस न हुए। दोनों भाई हठ करके बैठे रहे मगर गुरु दरबार में उपस्थित न हुए।

पांचवें पातशाह श्री गुरु अर्जुन देव जी महाराज स्वयं सिंघासन से उठकर रबाबियों के घर पहुंचे। संगत भी गुरु जी के साथ जाना चाहती थी लेकिन सतिगुरु जी ने भाई गुरदास जी के अलावा किसी अन्य को साथ न लिया। दीन दुनिया के वाली सत्ता और बलवंड के घर पधारे तो सबब से दरवाजा खुला हुआ था। गुरु साहिब आंगन में चले गए। आगे दोनों भाई चारपाई पर बैठे थे। उन्होंने इतना जिद्दीपन अपनाया कि न उठकर श्री सतिगुरु अर्जुन देव जी को नमस्कार की और न ही उनका स्वागत किया। अपितु आंखें झुकाकर बैठे रहे। सतिगुरु जी ने नम्रता से वचन किया, 'चलो, भाई ! गुरु घर में कीर्तन करो और सतिगुरु नानक देव जी की खुशियां प्राप्त करो। गुरु घर के साथ नाराज होना ठीक नहीं, गुरुबाणी संगत को सुनानी है। आपकी कन्या की शादी के लिए आपको पर्याप्त धन मिल जाएगा।'

राय बलवंड बड़ा गुस्सैल स्वभाव वाला साबित हुआ। उसने आगे

से बड़े अहंकार के साथ कहा, 'हमने नहीं कीर्तन करने जाना। हमने आपको गुरु बनाने का प्रयास किया लेकिन आपने हमारे साथ छल करके भेंटें न चढ़ने दीं, जिससे दिल चाहे कीर्तन करवा लें। हम किसी अन्य सोढी के पास चले जाएंगे। श्री गुरु नानक देव जी से लेकर गुरु रामदास जी तक हम ही गुरु बनाते आए हैं, यदि हम कीर्तन न करते तो आपको किसने गुरु मानना था ?'

श्री गुरु अर्जुन देव जी ने जब ऐसे कटु वचन सुने तो बड़े सतिगुरुं की निंदा सुनी, तब वह सहन न कर सके और क्रोध में आकर वचन किया-'सत्ता और बलवंड आप कुष्ठी हो गए हो, यह कुष्ठ आपको तंग करेगा।' यह वचन करके गुरु जी अपने दरबार में आ गए।

दरबार में आकर गुरु जी ने अपनी आत्मिक शक्ति का एक महान चमत्कार दिखाया। वह चमत्कार इस प्रकार था कि उन्होंने दरबार में हुक्म कर दिया कि आज से गुरु घर के सिक्ख आप कीर्तन किया करेंगे। साज बजाएंगे और ऐसे अहंकारी गायकों की कभी आवश्यकता नहीं रहेगी। यह वचन करके सतिगुरु जी ने दो सिक्खों को इशारा किया कि वह साज पकड़कर कीर्तन करें। सिक्खों ने साज लेकर राग गाया। ऐसा चमत्कार हुआ कि गंधर्व रागियों की तरह कीर्तन का रस बंध गया तथा सचमुच ही रबाबियों की आवश्यकता न रही।

सत्ता और बलवंड को कुष्ठ रोग होना

सतिगुरु जी के वापिस आने के पश्चात सत्ता और बलवंड को सचमुच ही कुष्ठ रोग हो गया। वह जिधर को निकलते, लोग उनके दर्शन न करते और अपना द्वार बंद कर लेते, क्योंकि वह सतिगुरु जी के फिटकारे हुए थे। धीरे-धीरे रोग बढ़ गया। एकत्रित किया हुआ धन समाप्त हो गया और गुरु निंदकों को किसी सोढी या बेदी

ने मुंह न लगाया। दिन-ब-दिन उनकी दशा खराब हो गई तथा वह दुःख पाने लगे।

दुखी हुए दोनों भाई चाहते थे कि सतिगुरु जी उन दोनों की भूल क्षमा कर दें लेकिन वह सतिगुरु जी के हजूर में किसी तरह भी नहीं जा सकते थे। गुरु जी ने हुक्म किया था कि जो भी कोई इन दोनों की फरियाद करेगा, उनका मुंह काला कर दिया जाएगा। जिस कारण कोई भी सिक्ख डरता हुआ सतिगुरु के समक्ष विनती न करता। सभी डरते थे कि सतिगुरु जी शायद उनको भी श्राप न दे दें।

दोनों भाई अपनी छत पर खड़े होकर अपने मुख पर आप तमाचे मारते थे और की हुई भूल पर रो-रोकर पछतावा करते। वह चिल्ला कर कहते, 'कोई हमारा दुःख सुने तथा गुरु जी के पास ले चले, हम पापी और महाकुष्ठी हैं। हमारी फरियाद सुनी जाए।' लेकिन कोई भी हां न करता जो उनकी फरियाद सुनता।

राय बलवंड को याद आया कि लाहौर में भाई लधा परोपकारी हैं। दुःख-तकलीफ उठाते हुए पैदल चलकर दोनों भाई लाहौर पहुंचे। भाई लधा जी के पास जाकर उन्होंने विलाप करके कहा, 'भाई लधा जी आप परोपकारी महापुरुष हो, यह तो आप ने सुन ही लिया है कि हमने सतिगुरु अर्जुन देव जी पातशाह के हजूर निंदा भरे वचन बोले हैं। अहंकार और लालच ने बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी। हम अन्धे और बहरे हो गए थे। सतिगुरु के वचन अनुसार हमें कुष्ठ रोग हो गया है। हम अत्यंत दुःखी हैं। कृपा करें और सतिगुरु जी से भूल क्षमा करवा दें।'

इस तरह विनती करते हुए वह रोते तथा पीटते गए। तब भाई लधा परोपकारी के मन में दया आ गई। उन्होंने वचन किया, अब आप जाएं, मैं कल सतिगुरु जी के दरबार में स्वयं हाजिर होकर प्रार्थना करूंगा और आपके लिए क्षमा की भीख मांगूंगा। आशा है कि सतिगुरु